ध्रुव – वल्लभ – विट्ठल नाटक

महाप्रभु श्रीमद् वल्लभाचार्य जी

जगद्गुरु श्रीमद् वल्लभाचार्य वंशावतंस
आचार्य वर्य्य गोस्वामि तिलकायित
श्री १०८ श्री इन्द्रदमन जी (श्री राकेश जी) महाराज

नाथद्वारा

प्राकट्य

जन्मतिथि
फाल्गुन शुक्ल ७
विक्रम संवत् २००६

जन्म दिनांक
२४ फरवरी १९५०

चि. १०५ गोस्वामि
श्री भूपेशकुमार जी (श्री विशाल बावा)

नाथद्वारा

प्राकट्य

जन्मतिथि
पौष कृष्ण ३०
विक्रम संवत् २०३७

जन्म दिनांक
५ जनवरी १९८१

श्रीमान् जगतक्रीडने को जयति

बालखेल

वा

आर्य गीर्वाण वाणी समलं कृतं.

ध्रुव चरित्रं

बालखेल वा ध्रुव चरित्रं

श्रीमद् वल्लभ कुल तिलक श्रीमद्गोस्वामी
श्री 108 श्री इन्द्रदमन जी (श्री राकेशजी) महाराज
श्री की आज्ञा से प्रकाशित

लेखक

श्री दामोदर जी शास्त्री
पूर्व विद्या विभाग
निरीक्षक

संशोधक

त्रिपाठी यदुनन्दन श्री नारायण जी शास्त्री
साहित्यायुर्वेदाचार्य एम.ए. हिन्दी संस्कृत
अध्यक्ष विद्या विभाग

प्रकाशक

विद्या विभागाध्यक्ष
मन्दिर मण्डल नाथद्वारा (राज.)

तृतीय संस्करण
भाद्रपद प्रतिपदा

संवत् 2075 | न्योछावर
प्रति 1000 | 30/– रु.

।। श्री हरिः।।

किंचित ज्ञातव्य

यह बाल खेल ध्रुव चरित्र श्री बाल दामोदर शास्त्री पूर्व विद्या विभाग निरीक्षक द्वारा विरचित है। श्री मद्वल्लभकुल तिलक श्री मद्गोस्वामी बालक श्री गोवर्धन लाल जी महाराज के जन्म दिन गुर्जर मास श्रावण कृष्ण प्रतिपदा मंगलवार संवत् 1939 में श्री सुदर्शन यंत्रालय नाथद्वारा से प्रकाशित हुआ था।

एक सौ सत्ताईस वर्ष पूर्व विरचित यह लघु नाटक है। जैसा कहा कि "काव्येषु नाटकं रम्यम्" किन्तु यह रम्य नाटक ही नहीं होकर बालकों को विद्या प्राप्ति एवं भगवत्प्राप्ति कराने वाला है।

इस प्राचीन ग्रन्थ को विद्याविलासी गोस्वामी तिलकायित श्री 108 श्री इन्द्रदमनजी (श्री राकेशजी) महाराजश्री की आज्ञा से विद्या विभाग ने प्रकाशित किया है। मुझे आशा है इसके अध्ययन से बालक कुशाग्रबुद्धि तथा भगवतोन्मुखी होंगे। इसलिए ही इस ग्रन्थ का प्रकाशन किया है।

निवेदक

त्रिपाठी यदुनन्दन श्री नारायण जी शास्त्री

लेखक परिचय

ध्रुव चरित्र के साथ ही सेठ गोविन्ददास रचित श्री वल्लभाचार्य एवं श्री गुसांईजी श्री विट्ठलनाथजी पर कल्याण में सन् 1956 मार्च तथा जुलाई 1972 में क्रमशः नाटक प्रकाशित हुए थे, वहीं से इन नाटकों को साभार उद्धृत किया गया है। ध्रुव चरित्र तथा श्रीवल्लभ श्री विट्ठल के नाटक को विद्या विलासी गोस्वामी ति. श्री 108 श्री इन्द्रदमनजी (श्री राकेशजी) महाराज की आज्ञा से विद्या विभाग ने प्रकाशित किया है।

श्री दामोदर शास्त्री का जन्म पूना में हुआ था। पढ़ लिखकर आप विवाहान्तर काशी में रहने लगे। वहाँ पर आपके प्रथम पुत्र जन्म पर प्रसूतिगृह में आपकी धर्मपत्नी का देहान्त हो गया था। कुछ समय पश्चात् पुत्र श्री कालकलवित हो गया। श्री शास्त्री जी विरक्त विद्वान् की तरह काशी में ही एकान्तवास करने लगे। परन्तु ढुंढीराज शास्त्री द्वारा आपका परिचय भारतेन्दु बाबू से कराया गया। इसके पश्चात् आपने कितने ही समय तक भारतेन्दु जी के "सरस्वती भवन" का कार्य सम्पादित किया। भारतेन्दु बाबू जी की राय से आपने पुनः द्वितीय विवाह किया। तदनन्तर आप नाथद्वारा आकर रहने लगे। यहाँ पर "वि. सं. हरिश्चन्द्र चन्द्रिका" नामक मोहन चन्द्रिका पत्रिका का प्रकाशन किया। इसके साथ ही आपने नगर प्रशासन का कार्य भी सम्भाला। आपने लिखा कि "संसार में काम की जितनी बातें हैं हमने सब बाबू हरिश्चन्द्र जी से ही सीखीं और उन्हीं के साथ बहुत लाभ उठाया। आपकी हिन्दी कविताएँ अधिकतर देखने को नहीं मिली है परन्तु गद्य की रचनाएँ प्राप्त है उनके गद्य में आपने दोहे लिखकर अपनी काव्यात्मकता को प्रकट किया है। ध्रुव चरित्र में ऐसा ही एक दोहा यहाँ पर उदाहरण के लिए दिया जा रहा है।

सर्वशास्त्रमथिये अरु करि फिर फिरहि विचार।
निकस्यो है यहि ध्यानकर, नारायण सब सार।।

सेठ गोविन्ददास ने पांच अंकों में श्रीवल्लभाचार्य नाटक लिखा है।

अध्यक्ष

श्रीमान् बालतनुर्बाल कृष्णो विजयतात्

"तत्र श्री र्विजयो भूति र्ध्रुवा नीति र्मति र्मम"

पूर्व रूपं

देखिये, यह बालकों के लिये ही बालखेल है। इसमें उत्तानपाद (उलथे पांव करने वाला अर्थात् ऊपर छाती पर सोने वाला) राजा, प्रिया (भार्या) होकर भी अप्रिया सुनीति तथा सुरूचि द्वितीया राणी का और सुरूचिका उत्तम तथा सुनीति के ध्रुव पुत्र का चरित्र विद्या पुत्रों के अर्थ मित्र भाव से वर्णन किया है। यदि बालक इस बाल खेल से संतुष्ट होंगे तो निश्चय उनसे सब ही बड़े–बड़े आनन्द पावेंगे, इसमें नीति, रुचि वा उत्तम, ध्रुव किंवा राजा के भी चरित्रों में जैसे सर्व व्यावहारिक विषय देखने वालों को प्रत्यक्ष होंगे वैसे ही तूंबी वाले खुले सिर के श्री नारद भगवान् के भी अलौकिक, (चरित्र) दृष्टि पात्र होंगे।

अस्तु केवल यह बालखेल समझकर घृणा वा अनादर मत करो। श्रीराम, श्रीकृष्ण प्रल्हादादिके बालखेल ही अब तक बेड़ा पार लगाते हैं। संसार में भी यही सार देख पड़ता है। चलो, तुमको रूचे वा न रूचे हमको तो इसी में आनंद है। चाहे मानो वा समझो – आखिर तो बालखेल ही है। आप लोगों का एक खिलाड़ी –

सर्व सिद्धा त्रयोदशी, ग्रहराम नवां ऽबुनि।

पुरुषोत्तम मासस्य कृष्णाक्ता शनिनायुता।।

भाषांतर

बाल खेल

बाल और खेल का प्रवेश

बाल - ध्रुव वाणी राणि अरु ध्रुवही वाको कुल।।
ध्रुव अदृष्ट अन्यन् नहीं देख्यो वा अनुकूल।।1।।

खेल - कैसे ? मित्र यही रहे सब घर बालन खेल।
नीति भरो कविवर रचित यह दामोदर केल।।2।।

इति नांदी वा मंगला चरण,

उत्तान पाद राजा का उत्तम के साथ प्रवेश

राजा – वत्स उत्तम, ध्रुव के साथ क्यों नहीं खेलते हो ?

उत्तम – तात, वह मुझे मारता है; और भी संगी उसी का पक्ष करते हैं।

राजा – पुत्र, तुम क्यों नहीं उनके प्यारे हो ?

उत्तम – पिता, गुरुजी उन्हीं सभी को वर्ग में मेरे ऊपर रखते हैं।

राजा – तो तुम अपना पाठ चित्त लगा कर नहीं पढ़ते ऐसा जान पड़ता है।

उत्तम – तात, क्या करूँ? मा (सुरुचि) को छोड़ मुझसे क्षण मात्र भी अलग नहीं हुआ जाता।

(इतने में खेलता हुआ चंचल मूर्ति हाथ में गेंद लिये ध्रुव आता है)

ध्रुव – तात, मैं उत्तम को बुलाने आया हूँ तो भेजें। उत्तम, देख वे संगी, चलो, फिर अपना पाठ देखना भी आवश्यक है।

नेपथ्य – आओ जल्दी ध्रुव; उत्तम यदि आवे तो उत्तम, नहीं तो तुम ीघ्र आओ।

(राजा आसन पर बैठता है और उत्तम भी वाम अंक पर बैठता है।)

ध्रुव – क्यों उत्तम, जाऊँ वा मैं?

राजा – ध्रुव, आओ बैठो, प्रथम मेरे प्रश्न के उत्तर दो अनंतर खेलने जाओ (अपने दक्षिण अंक पर बैठाता है) बोलो क्या आज पढ़ा?

ध्रुव – जनक, आज मैंने अधिक मास, पुरुषोत्तम मास वा संक्रान्ति रहित मास की व्यवस्था गुरु मुख से सुनी।

राजा – हाँ? कैसी वह?

(ध्रुव जो वर्णन करता है इतने ही में उत्तम की माँ सुरुचि उसको अंक पर से ढकेलती और धिधकारती है।)

सुरुचि – वत्स ध्रुव, तुम तो निरे वाल (मूर्ख) ही हो। परन्तु राज पुत्र को ऐसा नहीं होना चाहिए। यह स्थान तेरे बैठने योग्य नहीं। सुरुचि के उदर दरी की तपस्या (गर्भ धारण से) है इस स्थान पर वास हो सकता है। यह सबको सुलभ नहीं है।

(ध्रुव, केवल लड़कों के स्वभावानुसार रोता हुआ आँख नीची करके खिन्न मुख से कहीं धीरे कहीं जल्दी जाता है और उत्तान पाद उसके और सुरुचि उत्तम के पीछे–पीछे जाते हैं।)

बाल खेल की भूमि वा प्रथम अंक

सुनीति का घर

सुनीति – संसार में सकल सुख और संपत्ति लोग कहते हैं, कितने राज्य को सुख कहते हैं, कितने संतति में सुख मानते हैं, परन्तु मुझे तो यह विलक्षण ही देख पड़ता है, कारण एक लड़का और वह भी सुशील मुझे है, राज्य भी है, परन्तु मेरे समान दुःखी कौन होगी! न जाने ऐसा सुन्दर लड़का भी कैसे राणी का चित्तं नहीं खींचता। यही बालक कितना चंचल और प्रकाश बुद्धि होकर भी न जाने राजा के हृदय को भी कैसे नहीं पिघलाता, न प्रीति से परमेश्वर की सुदृष्टि पाता है, क्या ऐसा ही मेरा अदृष्ट है कि मैं ध्रुव को नरपति के अंक पर कभी भी नहीं देखूँगी।

(रोता हुआ ध्रुव आता है)

हाँ? यह क्या? प्राण पुत्र क्या हुआ? (उठकर हृदय से लगाती है और आलिंगन करती है और बार–बार प्रेम वा खेद से पूछती है।) तनय, कहीं क्या हुआ? क्या खेल में तो कुछ नहीं लगा? अथवा किसी ने कुछ दुर्वचन तो नहीं कहे? क्या तुझे हुआ? खेल में हार तो नहीं गये? क्या गुरु अथवा मित्र तो किसी बात से पढ़ने पढ़ाने में क्रुद्ध नहीं हुए? क्या हुआ मेरे प्यारे? बाल, बोल, तेरे दुःख से मेरा रक्त मांस सूखा जाता है। क्या अनाथ के समान रो रहे हो? भला वत्स में कैसे तेरी बात जानूं? ईश्वर की भी सुदृष्टि नहीं तो पुत्र का

खेद कहे बिना कैसे समझ पड़े। वत्स, शीघ्र कहो। मीठे बोलों से मुझे प्रसन्न करो। क्यों रे गोपाल, क्यों यह ध्रुव बालक रोता है?

गोपाल (वयस्य) – देवि, महाराज्ञि, यह तो मैं नहीं जानता, केवल यह राज सभा में उत्तम को बुलाने गया और वहाँ से रोता हुआ बड़ी खिन्नता से आया। हमारे खेल में कुछ भी इसको लगा नहीं, न आज अभी हमारा खेल हुआ है, गुरुजी ने भी कुछ नहीं कहा है।

ध्रुव – (राज सभा का नाम सुनते ही फिर मुक्त कंठ से आह फोड़कर रोता है।)

सुनीति – बाल, क्या महाराज ने तुमको मारा? अथवा नृपवर ने उत्तम की प्रीति से कोई दुर्वचन कहा? बोल, जो कुछ हुआ हो। बिना कहे पुत्र, रोने का कारण कैसे जान पड़े? किंवा सुरुचि की भर्त्सना से तो चित्त में इतने दुःखी नहीं हुए हो?

ध्रुव – (अधिक ही रोता है।)

सुनीति – वत्स, क्या महाराज के सामने ही सापत्न माने कुछ दुरुक्ति से तुम्हारा (चित्त खण्डन तो नहीं किया?) बोल –

ध्रुव – माँ, मैं खेलने के लिए उत्तम को पुकारने गया था।

सुनीति – कहाँ था उत्तम ?

ध्रुव – राजा के पास जब तक मैं उसको बुलाता था उतने ही में तात चरण ने मुझे गोद में लिया; पठनादि के लिए भूपति ने पूछा न जाने मेरा वाक्य सुनकर ही वा सुरुचि आई और

"तुम यहाँ बैठने योग्य नहीं हो, यदि अंक पर बैठने की इच्छा करो तो सुरुचि के उदर दरी में तपस्या पहले कर लो" ऐसा कहकर मुझे गोद से ढकेल दिया। मैं भी बड़े खेद से रोता और आँसू पोंछता हुआ तेरे पास आया परन्तु न तात ने, न उत्तम ने समाधान किया। हाँ! हंत! माता, पिता भी क्या अपने से उत्पन्न लड़कों को भी भिन्न भाव से देखता है? हाँ? जननी, पिता ने कुछ भी उसको (सुरुचि को) न कहा न मुझे समझाया।

सुनीति – वत्स मत रो, जब काल विपरीत होता है तब सर्व आत्मीय भी वैसे ही हो जाते हैं; फिर जो सुरुचि (सुस्वाद) से आनंद पाने वाले और सुनीति से विमुख मनुष्य हो उनका क्या पूछना? अस्तु, अब शांत हो जाओ। फिर से राजगृह में मत जाओ। क्या तुम्हें उत्तम ही से काम है? और क्या खेलने वाले कोई नहीं है?

ध्रुव – माँ, वह तो ठीक, पर मैं अपने बंधुत्व से ही बार बार उसे पुकारता हूँ।

नहीं तो कोई भी हमारी मण्डली में से उसको देखना नहीं चाहते।

सुनीति – अच्छा चल जेमने की बेला हुई भोजन करो। आज प्रभात से वैसे ही परीक्षा के लिये पाठशाला में गये थे। उठ गोपाल, जा पाककत्री (रसोई करने वाली) को बुला लाओ। तुम भी यहीं खाओ।

गोपाल – जो आज्ञा राजराणी, यह पाककर्त्री समेत आया। (जाता है।)

सुनीति – उठ वत्स, चल खाने को (हाथ पकड़ कर ले जाती है।)

ध्रुव – जननी, पूरी बात तो तुमने सुनी ही नहीं, तो क्यों मुझे आग्रह करती हो?

सुनीति – क्या? वह पूरी क्या?

ध्रुव – जब तात चरण ने कुछ भी माँ सुरुचि को नहीं कहा और मैं भी खिन्न होकर रोता हुआ चला आया। तभी मैंने अपने मन में प्रतिज्ञा की कि जब मैं इस (राजांक) से भी उत्तम और अचल स्थान पाऊँगा, जिससे कोई भी दूर नहीं कर सके – तभी भोजन करूँगा तो मुझे कहो, कौन ऐसा अचल पद देने में समर्थ है ?

सुनीति – भ्रांत (पागल) यह क्या? परमेश्वर ने ही हमको ऐसे सनाथ होकर भी अनाथ किया है तो शोक वा प्रतिज्ञा से क्या? चल जीमने को गुस्सा छोड़ो; उठो।

ध्रुव – माँ, ऐसा मुझे मत कहो; मुझे न खाने की रुचि है न राज्य में। मैं भगवान के पास जाता हूँ। जिससे हे जननी, आज निश्चय उन्हें पाऊँगा।

सुनीति – वत्स, यह क्या कहते हो? अरे यदि भगवान पहिले से प्रसन्न होता हो तुमको इतना कष्ट क्यों भुगतना पड़ता? ओर क्यों खेद होता? तनय, काल योग ही ऐसा है, अपने मन की ऐसी खिन्नता छोड़ो और उठो, खाने को चलो।

ध्रुव – नहीं माता, भोजन नहीं होगा। जब तक मैं भगवान के पास जाऊँगा और अचल पद खूब निश्चय के साथ नहीं लाऊँगा तब तक मैं कभी नहीं खाऊँगा। तुम खाओ। मुझे निषेध मत करो। यह मैं चला माता, प्रणाम करता हूँ। (जाने लगता है और सुनीति रोकती है।)

सुनीति – वत्स, क्या तुम विक्षिप्त तो नहीं हुए? कहाँ श्री हरि और कहाँ बाल शरीर; तुम क्या सोच रहे हो? क्या तेरी व्यवस्था होगी? अरे यदि भगवान ही सहाय करने वाला हो तो फिर हमको विपत्ति कहाँ की? वत्स, जब प्रारब्ध प्रतिकूल होता है तब भगवान भी प्रतिकूल सदा रहता है तो शोक छोड़ो बाल, ऐसे क्या खिलवाड़ कर रहे हो?

ध्रुव – माँ, मेरी बांह छोड़ो, मैं तेरी अच्छी बात भी नहीं मानूँगा। मैं उसी के पास जाता हूँ जो सब (खाना पीना) देता है, सच कहता हूँ।

माता केवल यही कहो कि भगवान सदा कहाँ रहता है? मैं उस जगती नाथ से तुमको भी सुखी कराना चाहता हूँ। बालक को जान कर मेरे वाक्य का अविश्वास मत करो। मैं राजपुत्र हूँ। मुँह से निकलने वाले बोलों को, हाथियों के दांतों के समान पीछा पलटने में असमर्थ हूँ। कहो माँ, नहीं तो किसी को भी मैं पूछ लूँगा अथवा पितृ चरण ही उसे कहेंगे।

सुनीति – भगवान यहाँ नहीं है? ऐसा वाक्य भी लोक में जो हो वह सब मिथ्या है; वह सर्वत्र अदृश्य और दृश्य वस्तु में सुख स्वरूप वास करता है, परन्तु देखने वालों को भी कठिनता से दीख सकता है तो कहो यह विश्वात्मा तुम बोलक हो कैसे सुख से देख पड़े? इसलिए कुमार, यह चंचलता छोड़ दो और प्रारब्ध का अनुसरण करो। यदि देव संतुष्ट (अनुकूल) होता तो भगवान त्रिभुवन नाथ भी अपना इष्ट करेगा।

ध्रुव – जननी, वह कुछ भी हो। आगे होने वाली विपत् के सोच से अनुद्योग करना तो आलसियों का काम है मेरा तो "मंगलायतन श्रीहरि है" (ऐसा कहके माँ को नमस्कार करता है) माँ मेरे लिये कुछ भी चिंता न करो। मैं शीघ्र ही आकर तुझे प्रणाम करूँगा। श्रीमान् श्री हरि तुझे निश्चिंत करें और यह तेरा बालक तेरे आंगण में खेलता रहे। बालक के कार्य भी होने में कुछ विशेष काल नहीं लगता है उसमें भी भगवान की कृपा जैसा निश्चय हो, वैसी होती ही है। (जाने को सिद्ध होकर फिर कहता है) माता, पिता को वा भाई उत्तम को यह कुछ भी मत कहो कि मैं गया हूँ; क्योंकि कार्य सिद्धि ही सब सम्बन्धियों को अपने आप बता लेगी। माँ, घर जाओ, श्री हरि को मेरी कार्य सिद्धि के लिये प्रार्थना करती रहो, लड़का कहाँ गया ऐसा खेद तिल भर भी न करो। (ध्रुव बोलता बोलता चला जाता है और सुनीति उसको समझाती हुई पीछे जाती है।)

जवनिका गिरती है।

शहर के दरवज्जे के बाहर का प्रदेश

नेपथ्य – वत्स, सुनो, हट मत करो, कहाँ जाते हो? आओ आओ।

(ध्रुव और उसके पीछे-पीछे उत्तानपाद आता है)

राजा – पुत्र, कहाँ चले? खड़े रहो; मेरी बात सुनो।

ध्रुव – तात, इसमें क्या सुनना है, मैं तो उसके पास जाता हूँ जो सबकी बात सुनता है न मैं गोद से दूर करने पर खिन्न हुआ हूँ। किन्तु सुनीति से भी मुझे सुरुचि माँ अधिक प्रिय है क्योंकि उसी ने मुझे भगवान के विषय में निश्चिंत और निश्चिंत किया।

न मेरे लिए कोई चिंता करना। जैसे पक्षी बच्चों को पंख आने तक ही पालते हैं, राज चरण अब लौटें, ध्रुव का आगे बढ़ा हुआ पांव किसी रीति से पीछे नहीं पलटेगा।

राजा – बाल, पहले तू मेरे प्रश्न का उत्तर दे और फिर जहाँ चाहे वहाँ जा, पर यह तो बताओ कि तुम कहाँ, किसलिये और किस कारण से जाते हो?

ध्रुव – तात, मैं उसी को देखने और उसकी कृपा पाने के लिये जाता हूँ, सुरुचि माँ ने मुझे प्रेरणा की है अतएव हे! श्रीमान् विश्वव्यापी भगवान को मैं देखूँगा।

राजा – अरे बालक, कहाँ तुम्हारा यह वय कहाँ मृदु शरीर, कहाँ राणी का वाक्य और कहाँ त्रिभुवन व्यापी परमेश्वर और कहाँ घर? पुत्र, वन में मत जाओ, मेरे साथ घर चलो। आओ, तुमको कितने एक गाँव अलग तोड देता हूँ उनका शासन करो, चलो।

ध्रुव – मुझे गाँव वा राज्य से क्या फल? हे नृप! मैं किसी रीति के वाक्य से नहीं पलटूंगा (ऐसा कहता हुआ आगे–आगे चलता है और राजा पीछे समझाता हुआ जाता है।)

जननिका गिरती है।

इति बाल खेले ध्रुव चरित्रे

ध्रुव बुद्धि बीजं (तृतीय अंक)

अरण्य

(नारद आते हैं)

नारद – आज मैंने त्रिभुवन यात्रा की, परन्तु कुछ सार वा किसी का उपकार किंवा उपदेश नहीं किया। अतएव स्वार्थ सिद्धि ही में मेरा आज का दिन बीता इससे व्यर्थ काल क्षेप का दोष मेरे सिर पर आ पड़ा। अस्तु, सांप्रत किसी पृथ्वी गामी सज्जन के सहवास से बचा हुआ काल व्यतीत करूँगा (ऐसा विचार कर चलने लगते हैं इतने में ध्रुव भी आता है।)

ध्रुव – ओहो, कैसा सूर्य तप रहा है। प्यास बड़ी पीड़ा दे रही है। कोई भी मनुष्य नहीं दिखाई पड़ता। इस वन में और अपने घर में सब समानता ही देख पड़ती है। कैसा यह सुनसान भगवान का स्वरूप दीखता है। मार्ग कहाँ है। कुछ पता नहीं लगता। क्या भगवान भी बालक का वाक्य जानकर नहीं सुनेंगे? (नारद को देखकर) अहो! यह तूम्बी वाला खुले सिरका कौन होगा? मुख से कुछ गा भी रहा है। इस घोर जंगल में क्या इसका काम होगा? क्या यह श्री हरि किंवा कोई वनवासी ऋषि तो नहीं होगा? लम्बी चोटी भी कितनी है। अथवा मयूर के समान नेत्र को आनंद देने वाली यह ब्रह्मा की क्या कृति है? (आगे जाकर) हे! सर्वांतर्यामि भगवन्, तुम कहाँ से मेरे दृष्टिगोचर हुए? हे प्रभो कौन रूप में तुम हो वा कौन हो वह कहो। हे पृथ्वी संचार करने वाले वीणाधर तुमको नमस्कार कहो नाम धारक नारद, नारायण के प्रीति पात्र तुमको मेरा नमन है। भो! ऐसे वन में भी दर्शन से सुख दाता मनोहर मूर्ति आप कौन हैं?

नारद – (प्रीति से) राज बाल, अभी मैंने मुझे नहीं जाना। मैं नारद ही हूँ, तेरे ही लिये मैं तेरे दृष्टि पात्र हुआ, नहीं तो मुझे कौन देख सकता है ?

ध्रुव – क्या आप ही भगवान् है तो? जिसके लिये मैं घर छोड़ कर आया हूँ।

नारद – (हँसकर और पास लेकर) बालक, क्या तुम भगवान को ढूँढ रहे हो? वत्स, भगवान् भाग्य के बिना दर्शन करने को सुलभ है क्या? प्रियतम तुम कौन हो? जो अकेले ही किस भ्रम से और किसके हेतु आरण्य में भटक रहे हो। वन में तो मरने ही को सुख शरण (गृह) मानने वाले बड़े वृद्ध विषयों से विरक्त पुरुषों का निर्वाह है। तुम तो अभी के बालक हो। अभी नाना भाँति के सुख वा विषयों की इच्छा से तुम्हारी तृप्ति भी नहीं हुई है तो ऐसा धैर्य और साहस करके कहाँ अब जा रहे हो? क्या करते हो?

ध्रुव – वन देव, यदि तुम मेरे गमन के उद्देश्य को नहीं जानते तो अवश्य मैं कहता हूँ कि आप भगवान् नहीं हैं और आपके साथ समालाप वा प्रश्नोत्तर से भी कुछ मेरा लाभ नहीं तो तुम अपने रास्ते से जाओ। चाहे देव हो वा ब्राह्मण हो। मैं भी अपने विचारे हुए को चित्त में चिंतन करूँगा। (आगे चलता है और नारद के रोकने पर फिर बोलता है) मुझे मत रोको। क्यों मेरे स्वकार्य साधन में वा भगवद्दर्शन में विघ्न करते हो? मैं तो जगत् पालक के पास जाता हूँ। यदि वही आप हो तो मेरे साथ मेरे घर चले और अपना पूरापरिचय वा परीक्षा दें।

नारद – (प्रेम से दृढ़ आलिंगन करके) अर्भक, मैं भगवद्दर्शन में तुझे विघ्न नहीं करता किन्तु उसी का उपाय तुझे कहने को यहाँ आया हूँ। मैं भी उसी जगन्नाथ की कृपा से त्रिकालज्ञ (भूत भविष्य वर्तमान जानने वाला) हूँ और उसी श्री परमात्मा की तुम्हारे ऊपर होने वाली पूर्ण कृपा से उसी के मार्ग में तुम्हारे साथ मिला हूँ।

ध्रुव – कौनसा वह उपाय ? कब उसका दर्शन होगा ?

नारद – वत्स, उसका उपाय तो तुम्हारे समान बालकों को अत्यन्त सुलभ है, क्योंकि बालक किसे प्रिय नहीं होते?

ध्रुव – वह तो सच है, यह अवस्था सभी को प्यारी, निश्चित और संसार के सुख–दुःख से हीन भी होती है। परन्तु साधन के बिना सिद्धि असम्भव है।

नारद – हरि प्रिय, तुम इतना जानते हो इसलिये तुम्हारे लिये सिद्धि दूर नहीं। जैसे तुम लघु बुद्धि हो वैसा लघु (छोटा–सा) ही साधन तुम को बताता हूँ जिससे शीघ्र ही तुम सिद्ध हो जाओगे।

ध्रुव – क्या वह मुनिवर? – पर मैं सिद्ध होने में प्रसन्न नहीं। मैं भी दर्शन बिना और कुछ नहीं चाहता। इसलिये उसका उपाय बताना।

नारद – सुन पुत्र, भगवत् प्राप्ति के मुख्य साधन उसके गुणों का श्रवण और स्मरण ही है। इन्हीं शास्त्रों में सदा सदुपयोगी पण्डितों ने निश्चय कर रक्खा है कि –

"सर्व शास्त्र मथिकै अरु करि फिर फिरहि विचार।।
निकल्यौ है यहि ध्यान कर नारायण सब सार"।।1।।

यद्यपि यही मुख्य सार वा भगवत्प्राप्ति का साधन है तथापि कुछ और भी बताता हूँ।

ध्रुव – अहा! (नमस्कार करता है) ऋषिप्रवर अब मैंने जाना। मुझे और कुछ अपेक्षा नहीं। संप्रति केवल मुझे यही बताना कि कहाँ वह नारायण है और कैसा वह है ?

नारद – बाल, यह तेरा प्रश्न मेरे समान लोगों को भी सुलभ नहीं है। क्योंकि भगवान नारायण जल, स्थल तथा दृश्य अदृश्य पदार्थ में भी वास करता है। जो परमेश्वर तैंतीस (कोटि) देवताओं को भी वद्य है। अनंत रूप धारी विशाल मूर्ति, अणु से भी अणु और महान् से महान् काल स्वरूप, जगती पती व भगवान् तेरे मनोरथ पूर्ण करे।

ध्रुव – (आनन्द से) मुनि श्रेष्ठ, जाता हूँ तो मैं, प्रसाद पूर्ण आपका आशीर्वाद मेरा सहचारी हो।

नारद – जा, सुख से जा आगे तपोवन है वहाँ गंगा तीर में ध्यान करता हुआ कुछ काल तपश्चर्या करो। वहीं पर शीघ्र ही श्री हरि को देखोगे। मैं भी श्रीनारायण को तेरा वृत्त कहूँगा यह भी मन में दृढ़ रखना कि – "परहित यदि स्वास्थ्य नसे तासुं न हानि मान।"

(नारद नाम घोष करते हुए जाते हैं और ध्रुव भी तपोवन में प्रवेश करता है।)

इति बाल खेले ध्रुव चरित्रे साधनां कुरः (चतुर्थोंकः)

तपोवन

(ध्रुव के तप और निश्चय से भगवान् प्रकट होते हैं।)

ध्रुव – आँ! यह क्या? आज यह क्या तेज देख पड़ता है। जिस पर दृष्टि नहीं ठहरती। अभी जो मैंने ध्यान किया वही आगे आया, ऐसा जान पड़ता है। क्या नारद गुरु का गुप्त उपदेश सफल हुआ? क्या मैं ध्यानावस्था में जल आहार आदि से हीन रहा अतएव तंद्रा, निद्रा वा स्वप्न में तो नहीं हूँ। नहीं यही गरुडध्वज भगवान् है। इन्हीं ने बालक प्रह्लाद के हेतु बड़ा परिश्रम सहन कर भी संध्या समय में स्तम्भ से अपना प्राकट्य दिखाया। इन्हीं ने वामन अवतार में बाल शरीर धारण कर बली (बलवान) बली राजा को भी दुर्बल किया। ये ही बाल लीला से स्नेह सम्पन्न श्री गोकुल–वासीजनों के साथ मित्र भाव ही से खेले हैं।

इन्हीं को ताटिकादि दुष्ट संहार संभूत जय श्री ने सीता देवी के पहिले वरा है ये ही सबके नमन से घिरे रहते हैं।[x] इसी से सब चराचर (जगत) उत्पन्न हुआ है। इसी का, मुझ बालक के भी मनोरथ पूर्णकर्ता बल है। इसी में मेरी दृढ़ चित्तवृत्ती लगी रही, यही निश्चित भगवान् का स्वरूप है।

(इत्यादि ध्यान कर तेज को न सहन करके आँख मींचता हुआ किंचित् काल श्वास रोक कर स्वस्थ बैठता है।)

---

[x] सर्वदेव नमस्कार : केशवंप्रतिगच्छति

(भगवान् भी प्रसन्न मूर्ति प्रसन्न चित्त से ध्रुव के सामने प्रकट होते हैं और उसे पुकारते हैं।

श्री हरि... मेरे भक्त बालक, उठ; क्यों इस घोर अरण्य में बैठे हो? इस अवस्था में खेल के बिना क्या चाहते हो?

ध्रुव – (तेज से हत बुद्धि होकर वैसे ही कुंठित वाक होता है और चित्र के समान भगवान की ओर तल्लीन होकर देखता हुआ विचित्र सा देख पड़ता है।)

श्री हरि – (ध्रुव को उठाकर वक्षःस्थल से लगाते हैं।) बाल, जाना मैंने सब सावधानता से दर्शन कर लो और जो इच्छित हो वह प्रार्थना करो। (शंख कपोल पर लगाते हैं।)

ध्रुव – (शंख का स्पर्श होते ही बुद्धि खुलती है और बोलता है) हरे मेरे मन की बात आपको कौनसी अजानी है? वही पूर्ण करके सर्वदा सुकृति अर्थात् पुण्यवान वा सुकार्य करने वालों को आप सुखी करें। वैसे ही सज्जन राजाओं को भी सुखी भी करें। उनका पद भी एक और अचल रहे मेरी और उन सबकी अचल प्रीति सर्वात्मा आप में नितय हो, यह जो कवि का काव्य है वह भी अचल कीर्ति का पूर्व स्थान हो। आपकी प्रीति मुझ बालक पर नित्य और नियत रहे। सदा शुद्ध बुद्धि बालक पढ़ने के समय सुखदायक तुम्हें वा इस काव्य को स्मरण करें। शुद्ध पुरुषों के शुद्ध आंतरिक विचार आनंद पूर्ण और अचल हो। इस बाल खेल से बांलक मत्तमन हो। किन्तु विद्याध्ययन से युक्त हो जाये।

श्रीभगवान् – वत्स वैसा ही होगा। तुम भी अचल पद पर वास करो और हे ध्रुव मेरे प्रसाद से तेरी वाणी भी ध्रुवा (नित्य सत्य) रहेगी। जाओ सुख से राज्य करो और सांसारिक सौख्यों से पूरे तृप्त हो जाओ। पितर और प्रजा को संतुष्ट करके पुनः मेरे पास आना।

ध्रुव – (श्री हरि को नमस्कार करता है।)

भगवन् कभी भी मुझे आपकी और आपको मेरी विस्मृति न हो।

भगवान् – (गद्गद् चित्त से आलिंगन कर उसको विदा करते हैं।)

जवनिका गिरती है।

इति विष्णु बालेन बालदामोदरेण विरचिते बाल खेले ध्रुव चरित्रे भगवत्प्राप्तिफलं।

(पंचमोंकः)

बालखेल

"क्रीडंति बालका यत्र तद्गृहं सुख कारकं"

बाल खिलाड़ी

(बाल और खेल प्रवेश)

बाल : ध्रुवा वाणी राज्ञी ध्रुव
मयि कुलं मत्प्रिय राखे ध्रुवस्यै
वाऽदृष्टं ध्रुवमिति सुदृष्टं, नहि परं।।

खेल : कथं मित्रा स्त्वेवं यदि सकल
सह्मन्यपि तथा स बालः संखेलन्
ध्रुव इव सुनीत्या नयनगः ।।1।।

इति नांदी वा मंगला चरणं

प्रविशत्युत्तानपादः

उत्तमेन सह

उत्तान पाद : वत्स उत्तम, ध्रुवेण सह कुतस्त्वं न क्रीडसि ?

उत्तम : तात, समां ताडयति, अन्ये चापि वयस्या स्तस्यैव पक्षं कुर्वंति। उत्तान पादः पुत्र, त्वं कुतस्तेषां प्रीति पात्रो न भवसि?

उत्तम : तात, पाद, शिक्षकस्तानेव सर्वान् मदुपरिस्थापयति वर्गे।

राजा : तर्हि भवान् स्वपाठं न पठति चित्तस्य एकाग्रया इति लक्ष्यते।

उत्तम : पितृ चरणाः किंकरोमि! मातृ सकाशस्य (सुरुच्याः) वियोगं न सहे क्षण महम्।

(एतदंतरे क्रीडा व्यग्रश्चंचलमूर्तिः कंदुकहस्तो ध्रुवः प्रविशति)

ध्रुव : तात, अहमुत्तमं आह्वयितुमागतस्तत् प्रेषयतु।

देव : उत्तम, पश्य तान् क्रीडा सुहृदः चल, पुनः स्वपाठावलोकनमपि आवश्यकम्।

नेपथ्ये : आगच्छ शीघ्रं ध्रुव, वयस्य, उत्तमो यद्यायाति, तर्हि, उत्तमं नचेत् त्वं शीघ्रमागच्छ।

(राजा आसने उपविशति उत्तमश्चवामांगे तिष्ठति।)

ध्रुव : किमुत्तम; यामि वाहं?

राजा : पुत्र, आयाहि, तिष्ठ, प्रथमं मत्प्रश्नोत्तराणि देहि, अनंतरं क्रीडार्थं गच्छ। (स्वदक्षिणांके प्रेम्णा अध्यारोपयति) ब्रूहि, किमद्य पठितं?

ध्रुव : जनक, अद्यमया अधिमासस्य, पुरुषोत्तममासम्य, संक्रान्ति रहितस्य वा मासस्य व्यवस्था गुरुखात् श्रुता।

राजा : आँ? कीदृशी सा?

(स वर्णयति तावत् सुरुचिः उत्तम माताऽपि तमंकतः अपसारयति भर्त्सयतिच)

सुरुचि : वत्स, त्वंतु सत्यमेव बालः (मूर्खः) परन्तु राजपुत्रेण एवं न भाव्यं नेतत् स्थानं (अंकरूपं) त्वदवस्थेयं। सुरूचया उदर दरी तपस्ययैवात्र वासः। नेदं सर्वेषां सुलभम्।

(बाल केवलं बालानां रोदनं बलमति बलेन रुदन् भूमातरं पश्यन् खिन्न मुखः कचिन्मंदं कचिल्लघुच गच्छतिः उत्तानपादरस्तं, सुरुचिश चोत्तममनुसरति।)

जवनिका पत्तनम्

इति बालखेले ध्रुव चरित्रे भूमिः (प्रथमांकः)

(सुनीत्याः गृहं)

सुनीति : हंत! कथं संसारे वा सकल सुख संपत्ति मतुलां वदंत्येके राज्यं? कथमति सुसंतत्यधिकतां।। ध्रुव स्त्वेको बालः सुगुण गणपालोपि मम इत्यहो राज्ञ श्चित्तं किमिव च न वा ऽकर्षयति यः।।2।।

महोद्योगी; चंचन्मति रति न किं राज हृदयं सुविद्राव्यन् प्रीत्या नच लभत ईशस्य सुदृशं।। अदृष्टं किं वास्ते मम कठिन मेतन्नयनयोर्यथा नाहं वीक्षे नरपति सुमुरूस्थित मिम्।।3।।

(रुदन् पुत्रः समयाति)

हा! किमिदं? प्राणपुत्र किमभूत्?

(उत्थाय वक्षसि धृत्वा आलिंगति पृच्छतिच वारंवारं प्रेम्णा खेदेन च)

तनय, ब्रूहि, किमभूत् ?

किमु क्रीडायां भो किमति तव लग्नं वद सखे, ऽथवा केनापि त्व मसि च मुख बाणै र्विनिहतः।। अभूत्किं ते, जाता किमु तव परा भूति रपि वा दलाभ्यां; वा रूष्टस्तव गुरूरथो मित्रमधुना? ।।4।। किं जातं? वद मज्जात, मज्जा मे स्नेह मज्जिता।। शुष्का बाल भवत्येषा वदतूर्णं हृदि प्रिय।।5।।

किमनाथवत्ते रूदितं प्रबोध्यं किं चा भवद् बालक मे तवात्र।। न ईश्वर प्रीति सुपात्र भूता अहं कथं वेदिम् सुतस्य खेदम् ।।6।।

वत्स ब्रूहि लघु त्वं, मधुर वचोभिः प्रसन्नतां तनु मे।। किं रे गोपालाभूत्? किमिदं संरोदिति ध्रुवो बालः?।।7।।

वयस्य : (गोपालः) – नाहं जाने देवि केवल मेषो गतो नृप सभाम्।।

उत्तम माव्हायितुं चायात, स्तस्माद्रुदन् सुखिन्नमनाः।।8।। नास्माकं क्रीडायां लग्नं किंचि्न् न चैव; वा अद्य।। क्रीडाऽस्माकं जाता, नहि किंचिच्छिक्षकेन वा उक्तम्।।9।।

(राज सभा नाम श्रवणतः पुना रोदिति मुक्त कंठेन)

सुनीति : बाल, किं राज्ञा ताडितो वा भवान्? अथवा नृप वरेण उत्तम प्रीत्या किंचिदपि दुर्वचनं उक्तम्? वद यत्किमभूत।।

विनावाचं कथं जाने सुत रोदन कारणं।। किंवा सुरूच्याः संभर्त्सनया चित्ते विदुःखितः।।10।।

ध्रुव : (अधिकं रोदिति)

सुनीति : वत्स, किं राज निकटे सापत्न मात्रा दुर्वचोभिः खंडितो वा? ब्रूहि।

ध्रुव : जननि, अहंतु क्रीडितु मुत्तममाकारयितुं गतः सुनीतिः क्वासी दुत्तमः?

ध्रुव : राजा विकटे यावदहं तमाव्हयामि ताव देव तात चरणेन स्वांके समारोपितः पठनाद्य पृच्छच्च भूपतिः न जाने

मद्वाक्यमाकर्ण्यैव वा सुरुचिमात्रा आगतं, "न त्वमत्राधिविष्टुं योग्यः, यदि चेच्छसीद मुत्संग समारोहणं, सुरुच्युदर दरी तपस्यां कुर्विति" उक्त्वा अपसारितोकात्। अहंच खिन्नमना रूदंस्त्वत्समीप मक्षिमार्जयन्नागतः, परन्तु न तातेन, उत्तमेन वा समाहितः। हंत! मातः, पितापि किं स्वोत्पन्नान् तनयान् पृथग्दृष्टय्या पश्यति? हा, जननि, पित्रा न सा किमप्यवा दि! न चाहं समाहितः।।

सुनीति : वत्स, मा रूदिहि।

कालेच विपरीते स्युः सर्वे स्वीया स्तथैव भोः।। किं पुनः सुरुचि प्रीताः सुनीत्यां विमुखा नराः।।11।। अस्तु, इदानीमाश्वसिहि। मागच्छ पुनाराज भवने किमुत्तमेनैव ते प्रयोजनं? किं न संति वा तेऽन्ये क्रीडा वयस्याः?

ध्रुव : सवित्रि, तत्तु सत्यं, परंतु आत्मीय बंधुत्वेनैवाहं वारं वारं तमाव्हयामि। नचेत् केपि तं नेच्छंति अस्मन्मण्डलीगतं द्रुष्टुम्।

सुनीति : अस्तु, चल, भुक्ति कालोऽभवत्। भोजनं कुरू अद्य प्रभातेपि परीषार्थं शीघ्रं तथैव गतोसि पाठशालाम्। उत्तिष्ठ; गोपाल, याहि पाककर्त्री माव्हय। त्व मपि अत्रैव भुंक्ष्व।

गोपाल : भवतु राज राज्ञिः, एष आगच्छामि पाक कत्र्यार्या सह। (याति)

सुनीति : उत्तिष्ठ वत्स, चल भोक्तुं

(बाहुं प्रगृह्य चालयति)

ध्रुव : जननि, पूर्णं वृत्तं तु नैव श्रुतं भवत्या। तत्किमिति मां आगृण्हासि?

सुनीति : किंतत् पूर्णम्?

ध्रुव : यदा तात चरणाः किमपि सुरुचि मातरं नानुनयन् अहं चखिन्नः संरूदन समागमं; यद्यदाऽह मेतदपेक्षयापि उत्तम मचलं च स्थानं लभेयं, यस्मात् कश्चिदपि नापसारयेत्, तदैव भोक्ष्यामि। तन्मां ब्रूहि, कीदृशः समर्थः अचल पद प्रदाने?

सुनीति : भ्रांत, किमिदं? परमेश्वरेणैव वयं ईदृशाः। सनाथा अपि अनाथाः कृताः तत्किं शोकेन प्रतिज्ञया वा। चल भोक्तुं, जहि तं रोषम्। उत्तिष्ठ।

ध्रुव : मात र्मामा ब्रूहि, भोक्तुंनो मे रूचिर्न राज्येपि।। गच्छाम्यहं परेशं प्राप्स्ये यस्मात् दृढं जनन्यद्य।।12।।

सुनीति : वत्स किमिदं वदसि? अरे, यदि हरिः प्रियः प्रथम मेव वासीत्तदा, किमर्थ मतुलं त्वया गहन कष्टमेतत् सदा। समाप्य खलु खिद्यते? तनय, कालयोगो हय्यं, त्यज स्वमनसः प्रिय प्रखर खिन्नतां भुंक्ष्व च।।13।।

ध्रुव : नहि नहि नहि मात र्भोजनं नैव भावि, यदवधि भगवंतं तं नयाम्यानयामि।। दृढ तर पद मस्मिन् संस्थितौ चाचलं; त्वं तनु न तनु निषेधं यामि मातर्नमामि।।14।।

(गंतु मुत्सहते सुनीतिश्च संरुणद्धि)

सुनीति : वत्स, किं त्वं विक्षिप्तस्तु ना भूः? क्वश्रीहरि र्बाल तनुःक्व पुत्र? किं चिंतितं का भविता व्यवस्था?।। अरे यदि श्रीहरिरेव चासीत् साहाय्य कृत्, किं विपदां स्थलं नः।।15।।

प्रतिकूल विधौ विधुश्चभोः प्रतिकूलः सततं इति स्मृतिः।।

जहि तच्छुचमेव बालक कुरुथाः किं शिशुलेखनं बत।।16।।

ध्रुव : जहीहि मातर्मम बाहु मेतं न मानये ऽहं तव सूनृतां वा वाणीं गमिष्यामि हरेः समीपे यः सर्वदाता ऋतमेव वच्मि।।17।। मातः केवल मेतदेव वद, क्वास्ते स सर्वदा? अहं तस्माज्जगतीनाथा त्त्वामपि सुखवतीं विधातु मिच्छामि। बालस्येति मत्वा मद्वचसि अविश्वाससं मा कुरू। अहं राजपुत्रः, मुखविनिर्ग्रतानां वाचां द्विरदानां रदा इव परावर्तने असमर्थः कथय मातः, नचेत्कमपि अहं प्रक्ष्यामि, अथवा तात चरणा एव कथयेयुस्तम्।

सुनीति : हरिर्नास्ते ऽत्रेदं वचन मपि लोके तदनृतं स सर्वत्राऽदृश्येपिच वसति दृश्ये सुख तनुः।।

परंतु द्रष्टृणा मपि कठिन दृश्य किमु पुनः शिशोस्ते विश्वात्मा कथय सुखदृश्यः कथ महो।।18।। त्यज चापलं कुमार प्रारब्धं स्वनुसर प्रकृतकाले।। यदि तत्तुष्टं कुर्यादिष्टं त्रिविष्टप्रपत्तिश्च।।19।।

ध्रुव : मातस्तत्किमपि भवतुअग्रे संभाव्य विपदां विमर्शेन अनुद्यमः।। अलसानां कृतिर्मेतु "मंगलायतनं हरिः"।।20।।

(इत्युक्त्वा मातरं प्रणमति)

मातश्चिंतां मा विदध्या मदर्थं शीघ्रं शीर्ष्णा त्वां समागत्य नौमि।। श्रीमान् श्रीशस्त्वां विचिंतां करोतु बालस्तेयं चत्वरे क्रीडताच्च।।21।। न कालो बाल सिद्धयर्थं बहुलः समपेक्षितः।। तत्रापि श्रीभगवतः कृपा निश्चय वासिनी।।22।।

(प्रस्थानोद्यतः पुनर्वक्ति)

वद मा मातः पितरं, मा वद बंधुं गतो ऽह मिति किंचित्।। कार्य सिद्धि रयि कथयेत् सर्व सर्वात्म बंधिने नूनं।।23।। गच्छ गृहं श्रीकृष्णं प्रार्थय मत्कार्य सिद्धि मपि नित्यं।। कुरूथाः क्लेशं तिलमपि नहि मातः शिशु रहो गतः क्वेति।।24।।

(ध्रुवो गच्छति ब्रुवन् सुनीतिश्च तं बोधयंती अनुसरति)

जवनिका पत्तनम्

इति बालखेले ध्रुवचरित्रे बहिर्द्वारं (द्वितीयोंकः)

गोपुर बहिः प्रदेशः

नेपथ्ये : वत्स, शृणु, हठं माकुरु क्वगच्छसि? आगच्छ, आगच्छ।

(प्रविशति ध्रुवस्तदनुयायी उत्तान पादश्च)

उत्तानपाद : वत्स, क्वगच्छसि? तिष्ठ, तिष्ठ शृणु मद्वचनम्।

कुमार : तात, किमिदं श्रवणीयं? अहं तु तं यामि यः सदा सर्वोक्तिः शृणोति नाहमंकापसारेण खिन्न, किमुत सुनीत्या अपि महय्यं सुरुची रोचते, ययाहं तद्विषयेनिश्चिंतो निश्चितश्चकृतः।

राजा : बाल, किमिदं वक्षि? नाद्यापि तेऽधरदुग्धं शुष्कं, न च भवता भवनांगणे रिंगणं विना ज्ञातं किमपि, शैशवे ईदृशी तिग्मता नोचिता एहि।

(इति तं धर्तु मुत्सहते)

कुमार : (किंचिदपसृत्य) जनक, नात्र भवता शंक्यं यदयं स्ववाचं मिथ्या करिष्यतीति। न च मद्विषये काचिदपि चिंता विधेया। यथा पक्षिणः पक्षागमावध्येव स्वबालकान् पालयंति। परावर्ततां राज चरणाः ध्रुवस्य अग्रसरण श्चरण इमां सरणिं न त्यक्ष्यति कथमपि।

राजा : बाल, त्वं तूत्तरय मे प्रश्नं प्रथमतः, सर।। क्व यासि वा किमर्थं भोः केन गच्छसि मानद।।25।।

कुमार : तात यामि तमेवाहं द्रष्टुं, लब्धुं च तत् कृपां। सुरूच्या प्रेरितः श्रीमन् विश्वव्यापिन मीश्वरं।।26।।

राजा : अरे बाल क्वेदं तव वपु रपीदं मृदु वयो वचः क्वास्ते राज्ञ्याः क्वच भुवन धर्ता के भवनं।। वनं न त्वं याहि स्वगृह मधुना मत्सहचरः समायाहि ग्रामान्कतिचिदपि शास स्ववशगान्।।27।।

कुमार : न मे ग्रामै राज्येन न च मम किंचित्फलमतो परावर्तेयं नो अह मखिल वाक्यै स्तव नृप।।28।।

(इति वदन् चलत्यग्रे पृष्ठतश्च राजा समनुनयन् याति)

जवनिका पतनं

इति बाल खेले ध्रुव चरित्रे ध्रुव बुद्धि बीजं

(तृतीयोंकः)

(प्रविशति नारदः)

नारद : अद्य मया त्रिभुवन यात्रा कृता, परंतु किमपि सारं, कस्य चिदुपकार, उपदेशो वा न व्यधायि। अतः स्वार्थ सिद्धावेव

ममा ऽद्यतन दिन यानेन वृथा काल हरण दोषः शीर्षणि आगतः अस्तु संप्रति कस्यचिद्वसुधा तलगामिनः सज्जनस्य। सहवासेनैव उर्वरितं कालं नयामि।

(इति विमृश्य चलितु मारभते; एतदंतरे प्रविशति ध्रुवः)

ध्रुव : सूर्यः संतपति प्रकाममपि मां तृष्णा महा बाधते, निर्मर्त्ये भुवने वनेच भवने साम्यं दृशो दृश्यते।। किं वेदं भगवत्स्वरूप मथवामार्गः क्वसंगच्छते? किं बालस्य निवेदनं कथ महो नाकर्णयेद्वा हरिः।।29।। (नारद विलोक्य) अहो कोयं तुबीधर उत सुनग्नोत्तमवपुः मुखे गायन्नाम प्रकट इह घोरेपि गहने।। हरिः। किंवा कश्चिद् वन पथविहारी मुनिवरः शिखीवाक्ष्णोः प्रीतिं जनयति विधातुः कृतिकरः।।30।।

(अग्रतोगत्वा)

सर्वां तर्यामि भगवन् कुतस्त्वं मम दर्शने।। किंरूपो वा भवस्येव मसि कस्तद्वद प्रभो।।31।। नमो नमस्ते जगतीचराय वीणा धरायास्तु नमोनमस्ते।।

नमो नमो नारद नाम धारिन् नारायण प्रीतिवहास्तु ते नमः।।32।। भो वनेपिदर्शनतः सुख कारिन् कोसि त्वं मधुर मूर्तिः?

नारद : (प्रेम्णा) नृप बालक, नाद्यापि भवान् मां वेद नारदं, त्वदर्थ मेवाह मत्र दृष्टि पात्रस्ते। न चेत् को मां पश्यति?

ध्रुव : किं भवानेव वा भगवान् तर्हि? यदर्थ मह मागतः संत्यज्य स्वगृहम्।

नारद : (विहस्य समीपे गृहीत्वा च) शिशो, किं भवान् भगवंत मन्वेषयति? बाल किं भगवान् भाग्येन विना द्रष्टुं सुलभो वा? प्रियतम, कस्त्वमेकाकी केन वा भ्रमेण किमर्थ मटव्या मटसि? अरण्यान्यां तु मरणमेव सुख शरणं मन्वानानां निर्वाहो ज्यायसां विषय विरक्तानां, भवांस्तु अधुनैव संसारे समुत्पन्नो ऽद्यापि विविध सुखवांछा परितृप्ति मलभमानो वैचित्र्येन किंकरोति, क्वगच्छति चेदानीम्?

बाल : वन देव, यदि च भवान् मम गमनोद्देश्यं न जानाति तर्हि निश्चयेनाऽहं वेद्मि यत् भगवान् न भगवान् नच भवता सह समालापेन भवत्प्रश्नोत्तर दानेन वा कश्चिन्मम लाभः संभवेत् तद्यातु देवो भूदेवो वा अहमपि स्वचिंचितं चित्ते चिंतयामि।

(अग्रगामी पुनर्नारदेन प्रतिरुद्धो वक्ति)

मा मां रुंधे : किमर्थं महय्यं स्व कार्य साधने भगवद्दर्शने वा विघ्नं करोषि? अहंतु जगत्पालकं यामि। यदि च सएव भवान् तर्हि चल मत्साकं मद्‌गृ, हं देहि च तवपरिचयं पूर्ण परीक्षां वा।

नारद : (दृढ़ मालिंग्य प्रेम्णा) अर्भक, नाहं भगवद्दर्शने ते विघ्नं करोमि, किमुत तस्यैवोपायं कथयतुमहमत्रा वर्तीर्णः अहं तस्यैव जगन्नाथस्य कृपया त्रिकालज्ञ स्तस्यैव भवति भाविना पूर्णानुग्रहेण तन्मार्गे त्वया सह संयुक्तो भूवम्।

ध्रुव : कः स उपायः? कदाच तद्दर्शनं भविष्यति?

नारद : वत्स, तदुपायस्तु अत्यंतं सुगमो भावदृशां बालकानां यतो बालाः कस्य न प्रियाः?

ध्रुव : तत्तु सत्यं, इय मवस्था सर्वेषामपि प्रेयसी, निश्चिता, संसार सुख दुःख विहीना च। परंतु साधनं बिना सिद्धि र– संभवाः?

नारद : हरि प्रिय, भवानेतावज्जानाति अतएव भवदर्थं सिद्धिर्न दूरे। यथा त्वं लघुबुद्धि स्तथैव त्वां प्रति लघु एव साधनं वक्ष्यामि येन त्वं शीघ्रमेव सिद्धो भविष्यसि?

ध्रुव : किं तन्मुनिवर? परमहं न सिद्ध भावे तुष्टः, न चाह मन्यदाकांक्षे श्री दर्शन विना। अतस्त दुपायः कथनीयः यदि जानासि।

नारद : शृणु, बाल भगवत् प्राप्तेर्मुख्या साधनिका तद्गुण श्रुति स्मृतिश्च, एष्वेव शास्त्रेषु एतन्नि श्चितं पण्डितैः सदा सदुद्यमिभिः यत् –

"आलोड्य्य सर्व शास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः।।

इदमेव सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणाः सदा।।"

यद्यपि एतदेव मुख्यं सारं साधनं वा भगवत्प्राप्तेः, तथापि किंचिदन्यदपि वर्णयामि।

आहा! (प्रणमति) ऋषिप्रवर, ज्ञातं मयेदानीं, नान्यस्य ममा पेक्षा, संप्रति केवल मिदं ब्रूत यत् स नारायणः कीदृक्च।

नारद : बाल, अयंप्रश्नस्तव न मा दृशामपि सुलभः, यतः भगवान्।

नारायण : जले स्थले तथा दृश्य अदृश्ये चापि वासकृत् त्रयस्त्रिंशद्देवतानां वंद्यः स पर मेश्वरः।।33।। अनंतरूपोपि विशाल मूर्ति रणोरणी यान् महतो महीयान्।। काल स्वरूपो जगतीपतिः स मनोरथ स्ते परिपूरयिष्यति।।34।।

ध्रुव : (आनंदेन) मुनिवर, यानि तद्य्यर्हः, प्रसादपूर्णो भवत माशीर्वादो मम सहचरीभवत नारदः याहि सुखेन, अग्रे तपोवन वर्तते तत्र ध्यानपरस्तप कियत्कालं गंगातीरे, श्रीहरितत्रैव द्रक्ष्यसि शीघ्रं अहमपि श्री नारायणं तव वृत्तं निवेदयामि, एतदपि हृदि दृढं निधेहि यत् परार्थं यदि हीयेत स्वार्थो हानि स्तुतत्र न।

(नारदः परिभ्रमन् नारायण नामघोषं कुर्वन् प्रयाति ध्रुवोपि तपोवनं प्रविशति)

जवनिका पतनं

इति बालखेले ध्रुव चरित्रे साधनांकुर (चतुर्थोऽकः)

तपोवनं

(ध्रुवस्य तपसा निश्चयेन च श्री भगवान् आविर्भवति)

ध्रुव : किमिदं? अद्य किं चैतत्तेजो दृश्यते यत्र दृष्टिर्न तिष्ठति इदानीमेव मया यथा ध्यातं तदेव पुर आयात मिति निश्चीयते किं नारदगुरोर्गुप्तोपदेशः सफलो वा? किमहं ध्यानावस्थायां जलाहारादि हीनः अतएवं तत्तंद्रायां निद्रायां स्वप्नेवा तु नास्मि? नहि अयमेव गरूडयानो भगवान्; अनेनैव बालतनोः प्रल्हादस्य अर्थे महतीं विपद मपि विषहय्य संध्यायां स्तंभा दाविरभावि। अनेनैव बालवपुषा वामन रूपेण बली अपि दुर्बलीकृतः अयमेव बाललीलया स्नेह संपन्नैर्गोकुलवासिभिश्चिक्रीडानंदेन सृहृन्निर्वेशेषं इममेव ताटिकादि दुष्टनाशना जय श्रीः सीता देव्याः प्रथमं वव्रे अस्मै एव सर्वेषां नतयः समावर्तयंति अस्मादेवेदं चराचरं समुप्तन्नं अस्यैवबलं मम बालस्यापि मनोरथ पूरकं अत्रैवमे मनः एतदेव निश्चलं भगवत्स्वरूपम्।

(एतावद्ध्य्यात्वा तेज असहमानो मुकुलिताक्षः स्वस्थ इव किंचित्कालं तिष्ठति श्वासमवरूध्य; श्रीहरिः प्रसन्नमनाः प्रसन्न तनु राविर्भवति पुरो ध्रुव माव्हयतिच)

भगवान् : मद्भक्त, बाल, उतिष्ठ, किमर्थ मस्मिन् घोरारण्ये तिष्ठसि? किं वांछसि क्रीडकनं विना ऽस्या मवस्थायां?

ध्रुव : (तेजसा हतबुद्धि स्तथैव कुंठितवाक् चित्रवद्भगवति विलीन दृष्टि र्विचित्र इव लक्ष्यते)

श्रीहरि : (ध्रुव मुत्थाप्य, वक्षसि समालिंग्यच) बाल, ज्ञातं, मया सर्वं कुरु दर्शन सावधानेन प्रार्थयच यद्वांछितं (इति शंखं कपोले स्पर्शयति)।

ध्रुव : (शंखस्पर्शाद्विशदमतिर्ब्रूते) हरे किं ते लक्ष्यं मम मनसि यच्चिंतितमदः प्रपूर्य प्रेम्णा तान् कुरु सतत सौख्यान् सुकृतिनः।। सतो राज्ञ स्त्वेकं भवतु पदमेवं समचलं सदा प्रीतिः सर्वात्मनि मम च तेषां हि भवतात्।।35।। कवेः काव्यं भूया दचल यशसः पूर्व भवनं भवत्प्रीतिर्नित्या भवतु मयि बालेपि नियता।। सदा बालाश्चेमं विशदमनसः पाठ समये स्मर त्वेवं भूयात्तवच सुखदा संस्मृति रपि।।36।। शुद्धाः शुद्धानां ते संकल्पाश्चा चलाः प्रमोद मदाः स्यु र्नहि बालामत्ता बाल खेलतो विद ध्ययन युक्ताः।।37।।

श्रीभगवान् : वत्स् तथैव प्रभवतु तिष्ठत्वचलं पदं भवांश्चापि।।
वाणी ध्रुव ते भूयात् ध्रुवा मदीय प्रसादयो नित्यं।।38।।
याहि सुखं कुरु राज्यं सांसारिक सौख्यतो भव सुतृप्तः।।
आयाहि पुनः कृत्वा पितरौ तुष्टौ प्रजाश्च मन्निकटे।।39।।

ध्रुवः (श्रीहरिं प्रणमति)

भगवन् कदापि नो मे स्यात् विस्मृति स्तेपि मे नहिं।।

भगवान् : (गद्गद् चित्तः समालिंग्य तं विसृजति)

जवनिका पतनं

इति विष्णु बालेन बाल दामोदरेण विरचिते बालखेले ध्रुव चरित्रे भगवत्प्राप्ति फलं (पंचमोंकः)

महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य

(पाँच अंकों में एक ऐतिहासिक नाटक)

मुख्यपात्र, स्थान, समय

मुख्यपात्र (नाटक में प्रवेश के अनुसार)

1. इल्लम्मागारू – श्रीवल्लभाचार्य की माता।
2. लक्ष्मणभट्ट – श्रीवल्लभाचार्य के पिता।
3. श्रीवल्लभाचार्य – नाटक के नायक।
4. नारायणभट्ट – श्रीवल्लभाचार्य के गुरु।
5. विद्यातीर्थ – विजयनगर के स्मार्तों के नेता।
6. व्यासतीर्थ – विजयनगर के वैष्णवों के नेता।
7. कृष्णदेवराया – विजयनगर के राजा।
8. बिल्वमंगलाचार्य – विष्णुस्वामी सम्प्रदाय के आचार्य।
9. श्रीगोवर्धननाथजी का स्वरूप।
10. कृष्णदास मेघन
11. वासुदेवदास छकड़ा
12. माधोभट्ट काश्मीरी श्री वल्लभाचार्य के साथ रहने वाले शिष्य।
13. दामोदरदास हरसानी
14. यादवेन्द्रदास कुम्हार
15. सद्दू पाण्डे – जिन्हें श्रीनाथजी के सबसे पहले दर्शन हुए।
16. कुम्भनदास – श्रीनाथजी के पहले कीर्तनियाँ तथा अष्टछाप के एक कवि।
17. सूरदास – अष्टछाप के कवि।
18. परमानन्ददास – अष्टछाप के कवि।

19. कृष्णदास – अष्टछाप के कवि।

20. अक्काजी – (महालक्ष्मी) श्रीवल्लभाचार्य की पत्नी।

21. .... वैष्णव, जो अक्काजी के संग रहती थी।

22. विट्ठलनाथ – श्रीवल्लभाचार्य के छोटे पुत्र।

23. श्रीगोपीनाथ – श्रीवल्लभाचार्य के ज्येष्ठ पुत्र।

24. जगन्नाथपुरी के राजा –

25. पुरोहित श्रीकृष्ण गुच्छीकार – जगन्नाथपुरी के राजा के पुरोहित।

26. श्रीचैतन्य महाप्रभु – (बंगाल के महापुरुष)

27. .... – श्री चैतन्य महाप्रभु के शिष्य।

28. .... – श्री चैतन्य महाप्रभु के शिष्य।

29. .... – श्री चैतन्य महाप्रभु के शिष्य।

स्थान – चम्पारण्य, काशी, विजयनगर, झारखण्ड, गोवर्धन पर्वत, गोकुल, अड़ेल, जगन्नाथपुरी, वृन्दावन।

समय – विक्रमीय संवत् 1535 से 1587 तक।

उपक्रम

स्थान – चम्पारण्य

समय – प्रातःकाल

(घना जंगल दि,खायी पड़ता है। जंगल में चम्पा के वृक्षों की बहुतायत है, जो सीधे ऊपर को चले गये हैं। एक वृक्ष के नीचे एक नवजात शिशु लेटा हुआ अपने पैर के अंगूठे को पी रहा है। शिशु का वर्ण मेघ के सदृश श्याम है। शिशु अत्यन्त सुन्दर है। सिर पर बड़े–बड़े लहराते हुए बाल हैं और सबसे अधिक आकर्षक है शिशु के विशाल लोचन। शिशु के चारों ओर परन्तु उससे कुछ दूर

आग लगी हुई है, जिससे जान पड़ता है कि शिशु एक अग्निकुण्ड के मध्य में है।)

(लक्ष्मणभट्ट और इल्लम्मागारू का प्रवेश। लक्ष्मणभट्ट और इल्लम्मागारू दोनों ही प्रौढ़ अवस्था के हैं। भट्टजी कुछ सांवले वर्ण के और इल्लम्मागारू गेहुँए वर्ण की। दोनों नही बहुत ऊँचे हैं और ठिगने, न बहुत दुबले और न मोटे। भट्टजी के सिर पर चौड़ी शिखा है और मुख पर मूँछें। शिखा और मूँछों के केश श्वेत हो चले हैं। वे श्वेत धोती धारण किये हुए हैं, ऊपर के शरीर पर श्वेत उत्तरीय है। ललाट पर तिलक लगा हुआ है। इल्लम्मागारू रंगीन साड़ी और चोली पहने है। उनके ललाट पर तिलक है। इल्लम्मागारू और लक्ष्मणभट्ट की दृष्टि एकाएक शिशु पर पड़ती है।)

इल्लमागारू – हैं...हैं... यह... यह क्या है...?

लक्ष्मणभट्ट – (बीच में ही) यहीं तो तुमने कल रात्रि को पुत्र प्रसव किया था।

इल्लम्मागारू – पर...पर, वह... वह तो अठमासा होने के कारण मृत था।

लक्ष्मणभट्ट – मृत था, तुम निश्चयपूर्वक कह सकती हो?

इल्लम्मागारू – जहाँ तक मेरा अनुमान है।

लक्ष्मणभट्ट – ऐसा तो नहीं है कि रात्रि के अन्धकार के कारण तुम्हें वह मृत जान पड़ा हो?

इल्लमागारू – (विचारते हुए) हो सकता है, क्योंकि आपके पूर्वज जो सोमयज्ञ करते आ रहे थे, आपके द्वारा उनके शतक की पूर्ति हुई। भगवान् ने आपको स्वप्न दिया कि वे मेरे गर्भ में प्रविष्ट हो अवतार धारण करने वालें हैं। कल रात्रि को जब अठमासा पुत्र हुआ, मेरा हृदय खेद से भर गया। सौ सोमयज्ञ की

पूर्ति पर जो वरदान आपको मिला था, उसका यह कैसा परिणाम – बार–बार मेरे मन में उठने लगा। पर भगवत्–गति का कौन पार पा सकता है – यह सोचकर मैं चुप रही।

लक्ष्मणभट्ट – परन्तु तुम्हारे प्रसव और मृत पुत्र की उत्पत्ति पर भी न जाने क्यों मेरे चित्त में खिन्नता न आयी थी, वरं प्रातःकाल होते–होते तो न जाने किस प्रकार के एक विलक्षण उत्साह से मेरा मन भर गया था।

इल्लम्मागारू – (विचारते हुए) थोड़ी देर की खिन्नता के पश्चात् वह तो मेरे मन की भी दशा हुई थी, (कुछ रुककर) तो... तो मेरा वही...वही पुत्र तो यह नहीं है, जिसे मैंने मृत मान लिया था?

लक्ष्मणभट्ट – परन्तु कहीं तुम किसी दूसरे के पुत्र को तो अपना पुत्र नहीं मान रही हो?

इल्लमागारू – (विचारते हुए) यदि, ऐसा...ऐसा होता तो माता के हृदय में अपनी संतान के प्रति जो अलौकिक स्नेह रहता है, वह इसे देखते ही मेरे मन में न उमड़ता।

लक्ष्मणभट्ट – इसकी तो परीक्षा हो सकती है।

इल्लमागारू – कैसे?

लक्ष्मणभट्ट – शिशु के चारों ओर अग्नि लगी हुई है, बढ़ो आगे, यदि हमारा पुत्र होगा तो अग्नि तुम्हें मार्ग दे देगी।

इल्लम्मागारू – इस अग्नि को तो, मेरे स्तनों से जो दूध झरने लगा है, उसकी धाराएँ ही बुझा देंगी।

(इल्लम्मागारू शिशु की ओर आगे बढ़ती है। उनके स्तनों से सचमुच ही दूध की धाराएँ निकलने लगती हैं, जिसके कारण अग्नि का इतना भाग बुझ जाता है, जिससे वे शिशु के निकट पहुँच सकें। नेपथ्य से गीत की ध्वनि आती है।)

आजु बधाई मंगलाचार।
गावत मंगल गान जुवति–जन
बसन साज सिंगार।।
मंगल कनक कलम सुभ मंगल
बाँधी वंदनवार।
मंगल मोतिन चौक पुराये
पंच सब्द गृह द्वार।।
घरघर मंगल महा महोच्छव
श्रीवल्लभ अवतार।।
हर जीवन प्रभु महापुरुष श्रीलक्ष्मण
भूप कुमार।।

(यवनिका)

पहला अंक

पहला दृश्य

स्थान – काशी में एक गुरुकुल के सामने का मैदान।

समय – संध्या।

(पीछे की ओर गुरुकुल के भवन के बाहरी भाग का कुछ हिस्सा दिखायी देता है। मैदान में आम के वृक्षों का बाहुल्य है, जो बसन्त के कारण मौरों से लदे हुए हैं। इन वृक्षों की वजह से यह मैदान एक सुन्दर अमराई बन गया है। मैदान में वल्लभ अपने सहपाठियों के साथ बैठे हुए हैं। वल्लभ की अवस्था ग्यारह वर्ष की है। साँवले रंग के होने पर भी वे अत्यन्त सुन्दर बालक है। वेष ब्रह्मचारियों का है। बढ़े हुए केश, ऊपर का शरीर खुला हुआ, नीचे के शरीर पर मूँज की मेखला में कौपीन, एक हाथ में दण्ड और

दूसरे में कमण्डलु। उनके सहपाठी उनकी अवस्था से बहुत अधिक अवस्था के हैं। इनकी अवस्था 18 वर्ष से 23 वर्ष के बीच में है। कोई गौर,कोई गेहुँए और कोई श्याम वर्ण के। वेश–भूषा वल्लभ के सदृश।)

एक विद्यार्थी – तो...तो, वल्लभ! तुम इस गुरुकुल को कल...कल प्रातःकाल सदा के लिये छोड़ दोगे?

दूसरा – छोड़ न देंगे तो अब ये यहाँ करेंगे ही क्या?

तीसरा – हाँ, ग्यारह वर्ष की अवस्था में वेद, ब्राह्मण, वेदान्त, ब्रह्मसूत्र, गीता, स्मृतियाँ, शास्त्र, इतिहास, पुराण सब में पारंगत हो गये।

चौथा – जो इनके पूर्व आये हुए हममें से एक भी न हो पाया।

पाँचवाँ – यह कैसे...कैसे हुआ, वल्लभ?

कुछ विद्यार्थी – (एक साथ) हाँ, कैसे हुआ ?

वल्लभ – यह तो मैं नहीं जानता कि कैसे हुआ! पर हुआ अवश्य है।

पहला – आश्चर्य! महान् आश्चर्य की बात हुई है।

तीसरा – हाँ। इस अवस्था में इस प्रकार समस्त वेद विद्या में पारंगत होना आश्चर्य की बात नहीं तो और क्या है? इसीलिये तो हम लोग तुम्हें बाल–सरस्वती, वाक्पति, ... आदि सम्बोधनों से सम्बोधित करते रहते हैं।

चौथा – हाँ, ऐसी प्रतिभा तो आश्चर्य की बात ही है।

कुछ विद्यार्थी – (एक साथ) आश्चर्य! महान् आश्चर्य!

वल्लभ – कुछ आश्चर्य की बात हो सकती है, पर महान् आश्चर्य की बात तो मैं इसे नहीं मानता।

दूसरा – यह कैसे ?

वल्लभ – अभी–अभी सुनने में नहीं आया कि अमुक बालक बोलना आरम्भ करते ही कुछ श्लोक भी बोलने लगा। अमुक बालिका को पाँच वर्ष की अवस्था में ही समस्त भगवद्गीता कण्ठस्थ हो गयी।

पाँचवाँ – कभी–कभी ऐसी बात की भनक कान में अवश्य पड़ती है। पर यह होता कैसे है ?

चौथा – हममें से कोई भी तुमसे कम परिश्रम नहीं करता, तुम्हारी अपेक्षा कहीं अधिक समय से यहाँ पढ़ रहे हैं।

कुछ विद्यार्थी – (एक साथ) हाँ।

चौथा – पर, तुमने जितना सीख लिया उसका शतांश भी हम न सीख पाये।

कुछ विद्यार्थी – (एक साथ) हाँ शतांश भी नहीं।

पाँचवाँ – बताओ न, यह कैसे हुआ? जिस बालक के मुख से बोलना आरम्भ करते ही श्लोक निकलने लगे, जिस बालक को पाँच वर्ष की अवस्था में ही समस्त भगवद्गीता कण्ठस्थ हो गयी, वह भी कैसे हुआ ?

कुछ विद्यार्थी – हाँ, कैसे हुआ?

वल्लभ – मैं भी नहीं कह सकता कि इस सबका क्या रहस्य है। पर हुआ यह अवश्य। पूर्व जन्म के संस्कार और भगवत् कृपा ही कदाचित् इसके कारण हों।

(कुछ देर निस्तब्धता)

पहला – तो...तो बालसरस्वती, वाक्पति, वैश्वानर...।

वल्लभ – (मुस्कराकर) और भी अनेक सम्बोधन बना डालो न!

तीसरा – जितने भी ऐसे सम्बोधन बनाये जा सकते हैं, बनाना ही चाहिये।

पहला – मैं कह रहा था वल्लभ! कल तुम चले अवश्य जाओगे।

दूसरा – मैंने कहा न, कि अब ये यहाँ रहकर क्या करेंगे!

चौथा – और... और कितना सूना हो जायगा यह गुरुकुल ऐसी महान् और दैवी प्रतिभा को खोकर!

तीसरा – और...और कैसे नीरस हो जायेंगे हम सबके जीवन भी वल्लभ के बिना?

वल्लभ – मित्रो! यह सारा जगत्–जीवन यथार्थ में नदी–नाव संयोग ही है, पर यथार्थ में देखा जाय तो न किसी का संयोग होता और न वियोग। तुम जानते हो मैंने वेद–विद्या को तोते के सदृश रटा नहीं है; उसे समझा भी है।

पहला – इसमें भी कोई संदेह है?

दूसरा – यदि समझा न होता तो हम सबको इस प्रकार समझा सकते थे!

वल्लभ – देखो, मित्रो! 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' इस सूत्र को मैं सबसे महान् सूत्र मानता हूँ, तुम वही हो जो मैं और मैं वही हूँ जो तुम। और यह समस्त सृष्टि वही है जो तुम और मैं। अर्थात् – 'सर्वे खल्विदं ब्रह्म'। कहो तो!

सब विद्यार्थी – (एक साथ) 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'।

पहला – पर कहने से क्या होता है?

दूसरा – और समझने से भी क्या होता है ?

तीसरा – हाँ, अनुभव होना चाहिये।

वल्लभ – कहते–कहते समझते–समझते अनुभव भी होने लगेगा।

चौथा – तुम्हें होता है ?

वल्लभ – निश्चयपूर्वक तो नहीं कह सकता, पर... पर कदाचित्... (चुप हो जाते हैं)।

कुछ विद्यार्थी – (एक साथ) होता है, होता है।

वल्लभ – अच्छा, समझने का यत्न करो। मैंने कहा न! 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' अर्थात् सम्पूर्ण विश्व ब्रह्म है। पर कोई भी एकाकी खेल नहीं खेल सकता। उसके लिये दूसरे की आवश्यकता रहती है, इसलिये भगवान् ने अपनी लीला के निमित्त अनेक रूप धारण किये। परन्तु जैसे कुण्डलाकार बना सर्प दण्डाकृति को लेकर भी विकारयुक्त नहीं होता, उसी प्रकार ब्रह्म अनेक रूप धारण करके भी विकारी नहीं है।

पहला – पूरा समझ में नहीं आया।

वल्लभ – कुछ उपमाएँ और लो! स्वर्ण के भूषण बनाये जाने पर भी स्वर्ण, स्वर्ण रहता है, मृत्तिका के पात्र बनाये जाने पर भी मृत्तिका, मृत्तिका रहती है, जल में ऊर्मियाँ उठने पर भी जल, जल रहता है, उसी प्रकार ब्रह्म अनेक रूप धारण करने पर भी ब्रह्म ही रहता है।

तीसरा – अब समझ में आया, पर अनुभव नहीं होता।

वल्लभ – यह ब्रह्म चैतन्य है, निराकार होने पर भी उत्पत्ति पक्ष की दृष्टि से इच्छा द्वारा साकार हो जाता है। जीव इसका एक अंश है। माया भी उससे पृथक् नहीं। खेल खेलने के लिये जिस प्रकार एक से अनेक की आवश्यकता होती है, उसी तरह माया की। अतः मैं श्रीमच्छङ्कराचार्य के मायावाद और इस कथन को

कि 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' को नहीं मानता। जगत् ब्रह्म का ही रूप होने से मैं जगत् को भी सत्य मानता हूँ और इसीलिये मेरा वाद है – 'ब्रह्मवाद, शुद्धाद्वैत'।

पहला – तो तुम कोई नया वाद चलाने वाले हो?

वल्लभ – मैं नहीं जानता। तुम मित्रों के सामने जो अनुभव करता हूँ, वह रख रहा हूँ।

दूसरा – और जो हमारे सामने रख रहे हो, वही सारे संसार के सामने भी रखोगे?

वल्लभ – हो सकता है।

(नारायणभट्ट का प्रवेश। नारायणभट्ट लगभग 64 वर्ष की अवस्था के हैं। वर्ण गेहुँआ, कद ऊँचा, शरीर दुबला, श्वेत धोती और उत्तरीय धारण किये है। नारायणभट्ट को देख वल्लभ और सब विद्यार्थी खड़े हो जाते हैं।)

नारायणभट्ट – तो...तो, वल्लभ! तुम कल प्रातःकाल ही अब इस गुरुकुल को सूना कर रहे हो?

वल्लभ – (सिर झुकाकर) क्या कहूँ, गुरुदेव!

नारायणभट्ट – और आज तुमने मुझे कही थी गुरुदक्षिणा की बात?

वल्लभ – यह तो हमारी संस्कृति की परम्परा है।

नारायणभट्ट – दोगे मुझे गुरुदक्षिणा?

वल्लभ – यदि मेरे सामर्थ्य की बात होगी!

नारायणभट्ट – तो, यही...यही गुरुदक्षिणा मांगता हूँ कि मुझे गुरु के नाम से प्रसिद्ध न करना। तुम्हारे सच्चे गुरु हैं वेदव्यास और तुम इस काल के होंगे जगद्गुरु।

(लघुयवनिका)

दूसरा दृश्य

स्थान – काशी में एक मंदिर का आँगन।

समय – तीसरा पहर।

(पीछे की ओर मंदिर का शिखर दिखायी देताहै। तीन ओर मंदिर की दालान का कुछ हिस्सा और बीच में आँगन। इस आँगन में बिछावन के ऊपर काशी के अनेक पण्डित बैठे हुए हैं, इनकी अवस्थाएँ भिन्न–भिन्न हैं, परन्तु इनमें प्रौढ़ और वयोवृद्ध अधिक हैं, युवा अवस्था के तो बहुत कम। कोई गौर वर्ण के, कोई गेहुँए और कोई साँवले, कोई मोटे, कोई दुबले और कोई न मोटे न दुबले। कोई ऊँचे, कोई ठिगने और कोई न ऊँचे न ठिगने। वेशभूषा भी अनेक प्रकार की है। धोती तो सभी पहने हैं, पर किसी का ऊपर का अंग खुला है, कोई ऊपर के अंग पर भिन्न–भिन्न रंग के उत्तरीय डाले हैं और कोई ऊपर के अंग में अँगरखा पहने हैं। सिर किसी का खुला है, जिस पर चौड़ी शिखा है और कोई–कोई सिर पर पगड़ी बाँधे हैं। ललाट पर अधिकांश त्रिपुण्ड्र लगाये हैं, किसी–किसी के ललाट पर सिन्दूर की टिकली भी लगी है। सब मिलकर दाहिने हाथ को हिला–हिलाकर वेदपाठ कर रहे हैं।)

ॐ द्रविणोदाः पिपीषति जुहोत प्र च तिष्ठत। नेष्ट्रादृतुभिरिष्यत।

(यजु. 26 / 22)

सविता त्वा सवाना ँ॒ सुवतामग्निर्गृहपतीना ँ॒ सोमो वनस्पतीनाम्। बृहस्पतिर्वाच इन्द्रो ज्येष्ठ्याय रुद्रः पशुभ्यो मित्रः सत्यो वरुणो धर्मपतीनाम्। (यजु. 9 / 39)

न तद्रक्षा ँ॒सि न पिशाचास्तरन्ति देवानामोजः प्रथमज ँ॒ ह्येतत्। यो बिभर्ति दाक्षायण ँ॒ हिरण्य ँ॒ स देवेषु कृणुते दीर्घमायुः स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः। (यजु. 34 / 51)

उच्चा ते जातमन्धसो दिविसद्भूम्याददे। उग्र ँ शर्म्म महि श्रव:। (यजु. 26 / 16)

उपास्मै गायता नर: पवमानायेन्दवे। अभि देवाँ 2।। इयक्ते। (यजु. 33 / 62)

एक पण्डित – (वेदपाठ पूर्ण होने पर) मैंने कहा था न कि यह वल्लभ वेदपाठ में सम्मिलित होने को कदापि न आयगा।

दूसरा – आपका अनुमान सर्वथा सत्य सिद्ध हुआ।

पहला – अनुमान का आधार था न, बन्धु!

तीसरा – कैसा?

पहला – मैं जानता हूँ कि वह चाहे कितनी ही डींग क्यों न हाँके और चाहे उसके समर्थक उसको ऊँचा उठाने का कितना ही प्रयत्न क्यों न करें, वह वेद पढ़ा ही नहीं है। वेद की एक ऋचा का भी स्वर में वह शुद्ध उच्चारण नहीं कर सकता।

चौथा – ऐसा?

पहला – निश्चित बात है। अन्यथा आता नहीं।

पाँचवाँ – ठीक तो है। काशी जो संस्कृत विद्या का केन्द्र है, उसमें भी जब सद्गुरु बारह वर्ष तक घुटवाते हैं, तब कहीं विद्यार्थी एक संहिता में पारङ्गत होता है और यह वल्लभ ग्यारह वर्ष की अवस्था में ही चारों वेद, ब्राह्मण, वेदान्त, ब्रह्मसूत्र, गीता स्मृतियाँ, शास्त्र, इतिहास, पुराण – सबमें पारङ्गत हो गया?

कुछ पण्डित – (एक साथ) हो नहीं सकता, हो नहीं सकता।

पहला – मुझे तो आश्चर्य होता है, उस नारायणभट्ट पर!

दूसरा – हाँ, कैसे कह दिया उसने कि वल्लभ समस्त वेद विद्या में निपुण हो गया है।

पहला – और फिर ग्यारह वर्ष की अवस्था में ही उसने अपना नया वाद निकाला है!

छठा – (अट्टहास कर) ब्रह्मवाद!

सातवाँ – शुद्धाद्वैत!

पहला – नाम तो आकर्षक हैं! ब्रह्मवाद–शुद्धाद्वैत!

आठवाँ – ग्यारह वर्ष की अवस्था में विद्याध्ययन पूर्ण करते हैं। वह वाद निकाल काशी और आस–पास घूम–घूमकर वह अपना और अपने वाद का प्रचार कर रहा है।

नवाँ – और धृष्टता तो देखो! जगद्‌गुरु श्रीमच्छङ्कराचार्य के भाषावाद का खण्डन कर अपने ब्रह्मवाद और शुद्धाद्वैत सिद्धन्त का मण्डन कर रहा है।

दसवाँ – परन्तु, यह कहना कि उसके कथन में तथ्य ही नहीं है, कदाचित् उनके साथ अन्याय करना होगा।

पहला – अच्छा! कम–से–कम यहाँ भी उसका एक समर्थक तो निकल आया।

दसवाँ – इस मण्डली में उनका चाहे मैं एक ही समर्थक क्यों न होऊँ; पर काशी और काशी के आसपास उनके बहुत से समर्थक हैं।

पहला – काशी और काशी के आसपास क्या सब विद्वान् ही रहते हैं, मूर्ख नहीं?

दूसरा – हाँ, समर्थ तो हरेक को मिल ही जाते हैं, क्योंकि संसार में कहीं मूर्खों की कमी नहीं।

कुछ पण्डित – (एक साथ) अवश्य।

(वल्लभ का प्रवेश। उनके आने पर केवल दसवाँ पण्डित खड़ा होकर उनका स्वागत करता है, शेष सब लोग बैठे रहते हैं। वल्लभ हाथ जोड़ सिर झुका समस्त पण्डितों का अभिवादन करते हैं।)

पहला – पधारिये, श्रीमद्वल्लभाचार्य! मायावाद का खण्डन कर ब्रह्मवाद शुद्धाद्वैत के प्रवर्तक!

(पण्डितों का अट्टहास)

वल्लभ – विद्वद्वर! कुछ विलम्ब से उपस्थित होने के लिये क्षमाप्रार्थी हूँ। (बैठ जाते हैं।)

पहला – विलम्ब से तुम जान–बूझकर आये हो!

वल्लभ – जान–बूझकर विलम्ब से आया हूँ... अर्थात्?

पहला – जान–बूझकर विलम्ब से आने का अर्थ तो जान–बूझकर विलम्ब से आना ही होता है। क्या इतने सरल शब्द भी समझ में नहीं आते? इतने सरल शब्दों का अर्थ करने की और इतने सीधे वाक्य का अन्वय करने की भी आवश्यकता है?

(पण्डितों का पुनः अट्टहास)

वल्लभ – मैंने, अर्थात् शब्द का उपयोग शब्दों के अर्थ और वाक्य के अन्वय के लिये नहीं किया था।

पहला – तब?

वल्लभ – आपने यह कहा था कि मैं जान–बूझकर विलम्ब से आया हूँ, इसलिये मैंने अर्थात् शब्द का उपयोग किया।

पहला – जान–बूझकर तो विलम्ब से आये ही हो, क्योंकि चार वेद, ब्राह्मण, वेदान्त, उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र, स्मृतियों और इतिहास, पुराण, शास्त्रों में पारङ्गत होने की डींग मारनेवाला जो वेद की एक ऋचा भी स्वर सहित शुद्ध उच्चारण करने में समर्थ न हो वो वेदपाठ के अवसर पर ठीक समय में कैसे उपस्थित हो सकता है?

कुछ पण्डित – (एक साथ) अवश्यमेव, अवश्यमेव।

वल्लभ – (सभी पण्डितों की ओर देखते हुए) विद्वद्वर! मैं आपकी सेवा में अपनी परीक्षा देने या इस प्रकार के विवाद में पड़ने के लिए नहीं आया हूँ। अध्ययन करते–करते मेरे मन में कुछ बातें उठीं, उन पर अध्ययन के साथ मैंने मनन किया, इस अध्ययन और मनन से कुछ निष्कर्ष पर पहुँचा, इन विचारों को मैं अन्यों के सदृश आपकी सेवा में भी उपस्थित करना चाहता हूँ। विद्वान हंस के समान होते हैं। दूध और पानी यदि हंस के सम्मुख रखा जाता है तो वह पानी का दूध ग्रहण कर लेता है और पानी को छोड़ देता है। उसी प्रकार मेरे कथन में यदि कोई सार हो तो आप ग्रहण कर लीजिये और यदि मेरा कथन निस्सार हो तो उसे छोड़ दीजिये।

दसवाँ – हाँ, विद्वानों को तो अपने मानस के कपाट खुले रखने चाहिये।

वल्लभ – तो सेवा में कुछ निवेदन करूँ।

(कोई कुछ नहीं बोलता। कुछ देर निस्तब्धता।)

दसवाँ – हाँ, हाँ! आप कहिये।

वल्लभ – देखिये, विद्वद्वर 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' इस सूत्र को मैं सबसे महान् सूत्र मानता हूँ।

पहला – इस सूत्र को सबसे महान् कौन नहीं मानता?

कुछ पण्डित – (एक साथ) सभी इसे सबसे महान् मानते हैं, सभी इसे सबसे महान् मानते हैं।

वल्लभ – अब यदि सब ब्रह्म हैं, तो जगत् मिथ्या कैसा? 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' यह विचार ही नहीं ठहरता, इसलिये मायावाद, विचारवाद नहीं, 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' सूत्र के आधार पर मेरा वाद है ब्रह्मवाद। इसे मैं शुद्धाद्वैत कहता हूँ।

पहला – यह बाल की खाल निकालने का पाखण्ड है।

कुछ पण्डित – (एक साथ) पाखण्ड! बड़े से बड़ा पाखण्ड!

वल्लभ – केवल पाखण्ड कहने से तो प्रश्न का हल नहीं होता। विचारों से मुझे परास्त कर दीजिये।

पहला – पाखण्डी के साथ कैसा विचार! जो निर्लज्जता से यहाँ तक घोषित करता है कि ग्यारह वर्ष की अवस्था में वह सारी वेद–विद्या में पारङ्गत हो गया, उससे बड़ा अन्य कोई पाखण्डी हो सकता है?

कुछ पण्डित – (एक साथ) कोई नहीं, कोई नहीं।

वल्लभ – इस विषय में तो आप मेरे गुरुदेव श्रीनारायणभट्ट से बात करें, मैं आपका समाधान किस प्रकार कर सकता हूँ?

पहला – नारायणभट्ट की इस पाखण्डमयी घोषणा के पूर्व काशी के विद्वत्समाज में उनका आदर था, पर तू उन्हें भी अपने साथ ले डूबा।

वल्लभ – मैं समझता था काशी का विद्वत्समाज शिष्ट व्यक्तियों का समाज है।

पहला – (अत्यन्त क्रोध से चिल्लाकर) अरे, कल का छोकरा तू हमें अशिष्ट कहने की भी धृष्टता कर सकता है?

वल्लभ – मैंने किसी को अशिष्ट नहीं कहा और छोकरे की बात आपने सुन्दर कही। क्या संस्कृत की एक उक्ति का आपको स्मरण दिलाऊँ –

'गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्ग न च वयः'

दूसरा – जो श्रीमच्छङ्कराचार्य को कुछ नहीं समझता, उसका हमारे प्रति क्या आदर हो सकता है!

तीसरा – तू जानता है, आज तक इस समस्त सृष्टि में शङ्कराचार्य से बड़ा कोई दार्शनिक और तत्त्ववेत्ता नहीं हुआ।

चौथा – उन्हें संसार में जगद्गुरु की पदवी से विभूषित किया गया था।

पाँचवाँ – और उनकी गद्दी पर बैठने वाले आज भी जगद्गुरु कहलाते हैं।

छठा – जब तक यह सृष्टि है, वे ही जगद्गुरु रहेंगे।

वल्लभ – श्रीमच्छङ्कराचार्य पर जितनी श्रद्धा और भक्ति आप लोगों की है, उससे मेरी कम नहीं। परन्तु यहाँ प्रश्न उनके महान् व्यक्तित्व का न होकर उनके वाद का है।

पहला – जो उनके वाद पर श्रद्धा नहीं रखता, भक्ति नहीं रखता, वह उनके व्यक्तित्व में कैसे श्रद्धा और भक्ति रख सकता है? (जोर से) उठो पण्डितगण, उठो! जहाँ जगद्गुरु शङ्कराचार्य का अनादर होता है, वहाँ क्षण मात्र को ठहरना भी पातक है। (उठता है।)

अन्य पण्डितगण – (उठते हुए) पातक ही नहीं, घोर पातक है, गौर पातक।

दसवाँ – यह तो शास्त्रार्थ न होकर कुछ और ही हो गया।

पहला – कैसा शास्त्रार्थ, किससे शास्त्रार्थ! ऐसे पाखण्डी से? (प्रस्थान)

(वल्लभ और दसवें को छोड़कर, अन्य सब पण्डित जाते हैं।)

दसवाँ – महानुभाव! जो कुछ हुआ उस पर मुझे अत्यन्त खेद है। मुझे आपसे अत्यधिक सहानुभूति भी है। परन्तु, आप जानते हैं, मानव सामाजिक प्राणी है, सभी अपने–अपने समुदाय में रहते हैं। मैं भी अपने समुदाय को तो नहीं छोड़ सकता। (प्रस्थान)

(कुछ देर निस्तब्धता)

वल्लभ – (विचारमग्न मुद्रा में दोनों हाथों को इस तरह उठाया है कि दृष्टि हाथों पर पड़ती है। फिर ऊपर देखते हुए)

भगवन्...भगवन्! पण्डित–समाज में इतनी...इतनी असहिष्णुता! वह...वह भी काशीपुरी में! पर...पर यदि मेरा वाद ठीक है, ठीक विचार पर आश्रित। साथ ही उसमें आपके चरणों में श्रद्धा है, भक्ति है, तो...तो आपकी पुष्टि आपका...आपका अनुग्रह तो मुझे प्राप्त होगा ही और...और उस पुष्टि...उस अनुग्रह के पश्चात् फिर...फिर, किसकी...किसकी तुष्टि की आवश्यकता रह जाती है। (कुछ रुककर) अभी...अभी काशीनिवासी और...और उनमें पण्डित मण्डली को ठिकाने पर आने में कदाचित् कुछ समय लगेगा!... विद्वान् शीघ्र किसकी...किसकी मानते हैं! विचार न कर केवल तर्क करते हैं, तर्क का कभी कोई अन्त नहीं। पहले पृथ्वी परिक्रमा कर डालूँ। आपका अनुग्रह पाकर इस ब्रह्मवाद और शुद्धाद्वैत सिद्धान्त का अन्यत्र प्रचार कर लूँ, काशी को अन्त में देखूँगा।

(नेपथ्य में एक गान की ध्वनि आती है, वल्लभ का ध्यान उस गान की ओर जाता है।)

मन तू समझ सोचि विचारि।
भक्ति बिनु भगवान-दुर्लभ कहत निगम पुकारि।।
साधु संगति डारि पाँसा फेरि रसना सारि।
दाव भर के परयो पूरो कुमति पिछली हारि।।
राखि सत्रह सुनि अठारह पंच ही को मारि।
डार दे तू तीन काने चतुर चौक निहारि।।

(लघुयवनिका)

तीसरा दृश्य

स्थान – विजयनगर के राजभवन का आलय।

समय – अपराह्न।

(आलय पाषाण का बना हुआ है, तीन ओर पाषाण की भित्तियाँ हैं, जिन पर दक्षिण भारत के दर्शनीय स्थलों के, जिनमें मन्दिरों की प्रमुखता है, रंगीन चित्र लगे हुए हैं। आलय की छत पाषाण के विशाल स्तम्भों पर स्थित है, स्तम्भों की नीचे और ऊपर की चौकियों पर सुन्दर खुदाव का काम है। आलय की भूमि पर रंग–बिरंगी बिछावन है, जिस पर आसनों पर देश के सभी विभागों के पण्डित विराजमान हैं। ये पण्डित देश के विभिन्न विभागों के हैं, यह इनके भिन्न–भिन्न रूपों और वेशभूषा से ज्ञात होता है। पीछे की भित्ति के सन्निकट एक सर्वोच्च आसन है, जो रिक्त है। इसी आसन के निकट एक आसन पर कृष्णदेवराया बैठे हुए हैं। कृष्णदेवराया अभी युवक हैं, वर्ण साँवला, कद ऊँचा, शरीर न मोटा और न दुबला। वे राजसी वेश में हैं। जरी का लम्बा अँगरखा पहने हैं, जिस पर जरी का उत्तरीय है। अँगरखे के नीचे जरी की किनारी की धोती, अङ्गों में स्वर्ण के रत्नजटित आभूषण हैं। सिर पर दक्षिणी ढंग की टोपी के सदृश ऊँचा स्वर्ण का रत्नजटित मुकुट है। कृष्णदेवराया के आसन के पीछे कुछ राजकर्मचारी और भृत्य खड़े हुए हैं। शास्त्रार्थ चल रहा है।)

विद्यातीर्थ – (कृष्णदेवराया से) तो राजन्! आपने माध्व, निम्बार्क और रामानुज सम्प्रदाय के अनुयायी वैष्णवों की ओर से पण्डित व्यासतीर्थ तथा शाङ्कर, शैव, शाक्त आदि सिद्धान्तों के अनुयायियों की ओर से मेरे समस्त तर्कों को सुन लिया। सात दिन से यह शास्त्रार्थ चल रहा है और अब तो कदाचित् कोई नये तर्क

आपके सम्मुख रखने को शेष नहीं है। (व्यासतीर्थ से) कहिये, पण्डितवर! आपका क्या कथन है?

व्यासतीर्थ – हाँ, मुझे भी अब कोई नया तर्क उपस्थित नहीं करना है।

विद्यातीर्थ – जब मुझे और पण्डित व्यासतीर्थ दोनों को ही कोई नया तर्क उपस्थित नहीं करना है, तब आप निर्णय कर लीजिये कि आपको कौनसा सिद्धान्त सर्वश्रेष्ठ जान पड़ता है। सात दिन तक शास्त्रार्थ के ध्यानपूर्वक श्रवण करने के पश्चात् मैं समझता हूँ, आप स्वीकार करेंगे कि श्रीमच्छङ्कराचार्य का मायावाद ही सर्वश्रेष्ठ वाद है।

(प्रतिहारी का प्रवेश)

प्रतिहारी – श्रीवल्लभ पधार रहे हैं।

(वल्लभ का कुछ शिष्यों के साथ प्रवेश। अब उनकी अवस्था चौदह वर्ष की है, परन्तु देखने में वे सोलह–सत्रह वर्ष से कम के दिखाई नहीं देते। कद ऊँचा हो गया है। शरीर कुछ भर गया है और ऊपर के ओंठ पर रेख निकल आयी है। वेश अभी भी ब्रह्मचारी का है। मेखला में कौपीन, एक हाथ में कमण्डलु और दूसरे में दण्ड। वल्लभाचार्य का एक अद्‌भुत प्रकार के तेज से युक्त स्वरूप इतना प्रभावशाली है कि उनके प्रवेश से ही सारी सभा उठ खड़ी होती है। कृष्णदेवराया आगे बढ़कर उनका स्वागत करते हैं और जो सर्वोच्च आसन रिक्त था, उस पर उन्हें बैठाते हैं।)

कृष्णदेवराया – भगवन्! इस सभा में आपका पदार्पण तो राजा बलि की सभा में भगवान् वामन के पधारने की बहुश्रुत घटना का स्मरण दिलाता है। असीम कृपा की है मुझ पर आपने यहाँ पधारकर।

वल्लभ – राजन्! मैं अपने को कृतकृत्य मानता हूँ यहाँ आने और समस्त देश के इस विद्वत्समाज के दर्शन करने के कारण।

(सारी सभा एकटक वल्लभ की ओर देखती रहती है; कुछ देर निस्ब्धता।)

वल्लभ – वैष्णवों और स्मार्तों का यह शास्त्रार्थ कितने समय से चल रहा है राजन्?

कृष्णदेवराया – एक सप्ताह से प्रभु!

वल्लभ – और अब तक कोई निर्णय नहीं हो पाया?

विद्यातीर्थ – (व्यासतीर्थ की ओर संकेत कर) पण्डित व्यासतीर्थ ने वैष्णवों की ओर से तथा मैंने स्मार्तों की ओर से इस शास्त्रार्थ में प्रमुख रूप से भाग लिया है। आपके आने के पूर्व हम दोनों ने ही राजा कृष्णदेवराया से निवेदन कर दिया था कि अब हमें कोई नये तर्क उपस्थित नहीं करने हैं। निर्णय कदाचित् श्रीमच्छङ्कराचार्य के मायावाद के पक्ष में ही होने वाला था कि आपका शुभागमन हुआ। इन दिनों में सुना था, बहुत समय से आप त्रिमदी बालाजी में निवास कर रहे थे। अब आपको भी यदि कुछ कहना हो तो कह दीजिये, तत्पश्चात् निर्णय हो जायगा।

वल्लभ – विद्वद्वर! वैष्णव और स्मार्त – सभी वैदिक धर्म के अनुयायी हैं। मेरी दृष्टि से सभी पूजनीय हैं, श्रीमच्छङ्कराचार्य, मध्वाचार्य, निम्बार्काचार्य, रामानुजाचार्य – सभी में मेरी असीम श्रद्धा और भक्ति है।

सभासद् – धन्य है, धन्य है।

वल्लभ – परन्तु इन आचार्य चरणों ने जो कुछ उपस्थित किया है, उस पर विचार करना हमारे लिये इस हेतु आवश्यक हो

जाता है कि वैदिक धर्म हमें अंधविश्वास नहीं सिखाता। कहिये, मैं ठीक कहता हूँ या नहीं?

अधिकांश सभासद् – ठीक, सर्वथा ठीक।

वल्लभ – 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' इस सूत्र को मैं सर्वप्रधान सूत्र मानता हूँ। कहिये, इसमें तो किसी का मतभेद नहीं है?

विद्यातीर्थ, व्यासतीर्थ के सहित समस्त सभासद – किसी का नहीं, किसी का नहीं।

वल्लभ – अब इस सूत्र के आधार पर उन समस्त आचार्य चरणों के वादों पर विचार कीजिये। यहाँ मैं 'विचार' शब्द पर सबसे अधिक बल देता हूँ। विचार साधार है, अतएव मीमांसा कहा जाता है, तर्क निराधार है, अतः अनुमान कहा जाता है। मीमांसा के आधार वेद और वैदिक शास्त्र हैं, किन्तु तर्क का आधार बुद्धि के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। मीमांसा का अन्त है, तर्क का अन्त नहीं। अतएव विचार का प्रामाण्य है, तर्क का नहीं। इसलिये वेद को प्रमाण मानने वाले विद्वानों ने विचार का आश्रय लिया है, तर्क का नहीं। मीमांसा में वेदवाक्य प्रधान और उपजीव्य होते हैं और विचार उनके तात्पर्य तथा सिद्धान्त का उपजीवन करता है। तर्क में तर्क प्रधान रहता है और वेदवाक्य उसके पीछे लगा दिये जाते हैं। कितने ही ग्रंथकारों ने तो स्पष्ट कह दिया है – 'एवमागमा अप्यनुसंधेयाः।' कहिये, इससे किसी का मतभेद है?

समस्त सभासद् – किसी का नहीं, किसी का नहीं।

वल्लभ – तो अब 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' के आधार पर श्रीमध्वाचार्य के द्वैत, निम्बर्काचार्य के द्वैताद्वैत और रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत पर विचार कीजिये और देखिये कि 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' के अनुसार ये वाद ठीक-ठीक बैठते हैं या नहीं?

विद्यातीर्थ – सर्वथा नहीं।

कुछ सभासद् – हाँ, सर्वथा नहीं।

वल्लभ – 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' सूत्र के अनुसार अद्वैत ही ठीक बैठता है।

विद्यातीर्थ – धन्य है, धन्य है।

कुछ सभासद् – धन्य है, धन्य है।

वल्लभ – परन्तु 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' के साथ अद्वैत का प्रतिपादन करते–करते जब श्रीमच्छङ्कराचार्य कहते हैं – 'ब्रह्म ....' और इस पर जब वे अपने मायावाद को प्रतिपादित करते हैं, तब वे भी 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' सूत्र से दूर होते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। यदि सब कुछ ब्रह्म है तो जीव और माया भी ब्रह्म से पृथक् नहीं तथा यह जगत् भी सत्य है, मिथ्या नहीं। इसीलिये मेरा वाद है – ब्रह्मवाद, शुद्धाद्वैत।

अधिकांश सभासद् – धन्य है, धन्य है।

विद्यातीर्थ – मैं भी आपके विचार को स्वीकार करता हूँ।

समस्त सभासद् – (एक साथ ऊँचे स्वर से) धन्य है, धन्य है।

(कृष्णदेवराया उठकर वल्लभ के चरणों में गिर पड़ते हैं।)

कृष्णदेवराया – (उठकर) प्रभो! यह शास्त्रार्थ आराम करने के समय मैंने संकल्प किया था कि जो शास्त्रार्थ में विजयी होगा, उसका सौ मन स्वर्ण से कनकाभिषेक करूँगा। अतः अब मैं इस संकल्प की पूर्ति की आज्ञा चाहता हूँ।

(वल्लभाचार्य कुछ न कह केवल मुस्करा देते हैं।)

कृष्णदेवराया – (अपने आसन के पीछे जो कुछ राजकर्मचारी और भृत्य खड़े थे, उनमें से प्रधान राजकर्मचारी से) लाओ अभिषेक की समस्त सामग्री।

(राजकर्मचारी का प्रस्थान और पुरोहित तथा भृत्य के हाथ में अभिषेक के लिये पूजा की सामग्री के साथ पुनः प्रवेश। इस राजकर्मचारी, पुरोहित और पूजा की सामग्री वाले भृत्य के पीछे उन .... की वृद्धि लग जाती है, जो एक–एक अपने सिर पर एक–एक मन .... उठाये हुए हैं। पुरोहित और पूजा की सामग्री वाला .... आसन के निकट पहुँचते हैं। पुरोहित खड़ा हो पूजा की सामग्री में से स्वर्ण का कलश उठा कुश से वल्लभ का मार्जन करता है। पुरोहित के अभिषेक करने को खड़े होने के कारण जिन भृत्यों के सिर पर स्वर्ण के भरे हुए थाल रखे थे, उनकी पंक्ति रुक जाती है और उनमें से कुछ ही दिखायी पड़ते हैं।)

पुरोहित –

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
सभूमि ँ सर्वतः स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्।।1।।
पुरुष एवेद ँ सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति।।2।।
एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।।3।।
त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि।।4।।
ततो विराडजायत विराजोअधि पूरुषः।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः।।5।।
तस्माद् यज्ञात्सर्वहुतः संभृतम्पृषदाज्यम्।
पशूंस्तांश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये।।6।।

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत।।7।।

इत्यादि।

(मंत्र समाप्त होने पर एक आसन पर बैठ जाता है।)

कृष्णदेवराया – अब, भगवन्! इस सुवर्ण को ग्रहण करने की कृपा करें।

वल्लभ – राजन्! मैंने आपकी संकल्प–पूर्ति में बाधा नहीं डाली। कनकाभिषेक का आपका संकल्प पूर्ण हो गया, परन्तु अब मेरे भी एक संकल्प की पूर्त्ति आपको करनी पड़ेगी, स्वीकार है न?

कृष्णदेवराया – आपकी कोई भी आज्ञा का अब मैं जीवनभर उल्लंघन कर सकता हूँ?

वल्लभ – मेरा संकल्प है स्वर्ण और उसकी समीपस्थ सभी वस्तुओं से जितनी दूर रहा जा सकता है, उतनी दूर रहा जाय। अतः यह सौ मन सोना मेरे काम का नहीं। इस सबको निर्धनों में बँटवा दीजिये।

सारा उपस्थित जनसमुदाय – (उच्च स्वर में) धन्य है, धन्य है।

कृष्णदेवराया – (गद्गद् स्वर से) जैसी आज्ञा। (राजकर्मचारी से) ले जाओ, इस स्वर्ण को और वितरण कर दो निर्धनों में।

(राजकर्मचारी का स्वर्ण के थाल उठाये हुए भृत्यों के साथ प्रस्थान। बिल्वमङ्गल का प्रवेश। बिल्वमङ्गल अत्यन्त वृद्ध हैं, परन्तु उनके मुख पर एक विलक्षण प्रकार का तेज है। गौरवर्ण, ऊँचा पर दुबला शरीर और सिर तथा दाढ़ी–मूँछों के बढ़े हुए श्वेत केश। बिल्वमङ्गल श्वेत धोती और उत्तरीय धारण किये हैं। बिल्वमङ्गल के स्वागत के लिये स्वयं वल्लभ खड़े होते हैं। उनके

खड़े होते ही सारी सभा खड़ी हो जाती है। बिल्वमङ्गल को वल्लभ अपने आधे आसन पर बिठाते हैं। सब लोग पुनः अपने–अपने स्थान पर बैठ जाते हैं।)

बिल्वमङ्गल – मैं विष्णुस्वामी–सम्प्रदाय का आचार्य बिल्वमङ्गल हूँ। मैं जब अधिक वृद्ध हो गया और मैंने जब विष्णुस्वामी–सम्प्रदाय के भार वहन करने योग्य किसी शिष्य को नहीं देखा तथा इस कारण जब मेरी विकलता बढ़ी, तब मुझे भगवत्–आज्ञा हुई कि यह भार आपको समर्पित करूँ। आप आज से विष्णुस्वामी–सम्प्रदाय के आचार्य।

सारा जनसमुदाय – श्री वल्लभाचार्य की जय!

कृष्णदेवराया – और, महाप्रभु! इस सम्प्रदाय के आचार्य होने पर प्रथम दीक्षा मुझे दीजिये।

वल्लभाचार्य – (मुस्कराकर) स्वीकार है।

जनसमुदाय – महाप्रभु, वल्लभाचार्य की जय!

कृष्णदेवराया – अब गुरुदक्षिणा के रूप में तो आपको कुछ स्वीकारना ही होगा महाप्रभु! (शीघ्रता से प्रस्थान और एक भृत्य के सिर पर एक सहस्र मोहरों का थाल लेकर पुनः प्रवेश।)

(कृष्णदेवराया भृत्य के सिर पर से थाल उठा स्वयं थाल को श्रीवल्लभाचार्य के चरणों में रखते हैं।)

वल्लभाचार्य – (थाल में से सात मोहरें उठाकर) राजन् इस द्रव्य में से ये सात मोहरें ही दैवी द्रव्य है, जो मैं उठा लेता हूँ यह कभी भगवत्सेवा के काम आयगा।

जनसमुदाय – धन्य है, धन्य है। महाप्रभु वल्लभाचार्य की जय!

(बिल्व मङ्गल आशीर्वचन के रूप में एक गीत आरम्भ करते हैं, जिसे सारा जनसमुदाय उनके साथ दोहराता है।)

कांकरवारे तैलंग तिलक द्विज बंदो श्रीमद् लक्ष्मणनंद।
श्रीबृजराज सिरोमनि सुंदर, भूतल प्रगटे वल्लभचंद।।
अवगाहत श्रीविष्णुस्वामिपथ नवधाभक्ति रत्न रसकंद।
दर्सन करत प्रसन्न होत मन प्रकटे पूरन परमानंद।
कीर्ति बिसद कहाँ लौं बरनौं गावत लीला श्रुति सुर छंद।
सगुनदास प्रभु षड्गुन संपन कलिजन उधरन आनँदकंद।।

(यवनिका)

दूसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान – झारखण्ड में एक झोपड़े का छोटा–सा शयनागार।

समय – रात्रि का तीसरा पहर।

(शयनागार में दीपक का मंद प्रकाश है। जिससे शयनागार और उसकी कुछ वस्तुएँ धुँधली–धुँधली दिखायी देती है। शयनागार की तीन ओर की खुरदरी कच्ची दीवालें हैं। पर वे सफेद घुई से स्वच्छ पुती हुई है। झोपड़ी की छावनी फूस की है। एक ओर एक खटिया पर वल्लभाचार्य निद्रामग्न हैं। निकट ही एक झारी में पानी रक्खा हुआ है और उसी झारी के निकट पानी पीने का एक पात्र। एकाएक पीछे की दीवाल पर प्रकाश दिखायी पड़ता है। उस प्रकाश में गोवर्धन पर्वत का एक भाग और उस भाग में श्रीनाथजी का श्यामस्वरूप। इस स्वरूप के सामने हाथ जोड़े और सिर नवाये हुए श्रीवल्लभाचार्य दीख पड़ते हैं। श्रीनाथजी का स्वरूप वैसा ही है, जैसा इस समय नाथद्वारे में विराजमान हैं। श्रीवल्लभाचार्य अब नीचे के अङ्ग में धोती और ऊपर के अङ्ग पर उत्तीय धारण किये हुए हैं। स्वरूप मुस्कराते हुए बोलता है।)

स्वरूप – वल्लभ! तुम्हें...तुम्हें अपने स्वरूप का पूर्ण ज्ञान नहीं, परन्तु तुम्हारे पिता को स्वप्न–सूचना देकर मैं ही तुम्हारे रूप में प्रकट हुआ हूँ।

वल्लभाचार्य – यद्यपि प्रभो! सभी जीव आपके ही अंश हैं, परन्तु मुझमें आपका यह पूर्ण प्रतिबिम्ब मुझ पर आपके अनुग्रह का ही द्योतक है।

स्वरूप – मेरी गीता की –

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।

– घोषणा का तुम्हें स्मरण दिलाता हूँ। यह जगत् मेरी लीला के निमित्त है और इस लीला में जब मेरी आवश्यकता होती है, तब इस घोषणा के अनुसार मैं स्वयं अवतीर्ण होता हूँ। इस समय यह अवतार तुम्हारे रूप में हुआ है।

वल्लभाचार्य – आपकी कुछ विलक्षण शक्ति मुझे प्राप्त है, यह तो मैं जानता हूँ। उन्हीं शक्तियों के कारण मैं ग्यारह वर्ष की अवस्था में वेद–विद्या में पारंगत हो गया, चौदह वर्ष की अवस्था मे विजयनगर के शास्त्रार्थ में विजयी हुआ। ये साधारण बातें नहीं है अलौकिक बातें हैं एवं बिना आपकी शक्ति और अनुग्रह के ये साधारण जीवों को अप्राप्य है; परन्तु यह जानते हुए भी आप मेरे स्वरूप में अवतीर्ण हुए हैं, यह मुझे आज ज्ञात हुआ।

स्वरूप – वल्लभ! प्रिय वल्लभ! मेरी इस लीला में आज तुम्हारी आवश्यकता थी। तुम्हारा ब्रह्मवाद और शुद्धाद्वैत सिद्धान्त ही आज दैवी जीवों का त्राण कर सकता है। तुमने अपने वाद और सिद्धान्तों को ठीक रूप में उपस्थित किया है और जिस विष्णुस्वामी–सम्प्रदाय के तुम आचार्य बने हो, वही सम्प्रदाय इस

समय दैवी जीवों का कल्याण कर सकता है। इस सम्बन्ध में दर्शनशास्त्र जहाँ तक जा सकता है, वहाँ तक तुम उसे ले गये; परन्तु इतना ही यथेष्ट नहीं है।

वल्लभाचार्य – तब?

स्वरूप – मानव मस्तिष्क और हृदय दोनों में शासित होने वाला प्राणी है। दर्शन मस्तिष्क का विषय है, हृदय के लिये कुछ और आवश्यकता है।

वल्लभाचार्य – उस सम्बन्ध में भी आज्ञा दीजिये, नाथ?

स्वरूप – उसके लिये तुम अपने सम्प्रदाय के द्वारा भक्तिमार्ग का प्रवर्तन करो।

वल्लभाचार्य – यह तो प्रभो! मेरी इच्छा थी ही और मैंने उसे आरम्भ भी कर दिया है।

स्वरूप – तुम उसे और आगे बढ़ाओ। इसीलिये मैं उस व्रज में, जिसमें भागवतकार व्यास के कथनानुसार ज्ञान और वैराग्य वृद्ध हो गये हैं और उनकी माता भक्ति तरुण, गोवर्धन पर्वत पर गोवर्धननाथ के रूप में प्रकट होना चाहता हूँ।

वल्लभाचार्य – (गद्‌गद् स्वर में) इससे अधिक आनन्द एवं उल्लास की और कौन बात हो सकती है, नाथ?

स्वरूप – तुम्हारे आविर्भाव का काल समीप जान गोवर्धन पर पहले मैंने अपनी भुजा प्रकट की। फिर जिस दिन तुम अवतीर्ण हुए, उसी दिन मैंने अपना मुख प्रकट किया, अब मैं सम्पूर्ण रूप से प्रकट होना चाहता हूँ।

वल्लभाचार्य – (उसी प्रकार के गद्‌गद् स्वर में) इस प्राकट्य से अधिक संसार के लिये और कौन–सी कल्याणकारी बात हो सकती है?

स्वरूप – तुम अपनी इस पृथ्वी–परिक्रमा को कुछ का
के लिये स्थगित करो और सीधे व्रज में गोवर्धन पर पहुँचो। स
पाण्डे की गाय धूसर ने सर्वप्रथम गोवर्धन पर मेरा पता पाक
अपना दुग्ध अपने–आप मेरे लिये स्रवण करना आरम्भ किय
उसकी कन्या नरो तथा अन्य व्रजबासियों को मेरा पता लगा। य
मैं देवदमन, इन्द्रदमन और नागदमन के नाम से प्रसिद्ध हो गया हूँ।

वल्लभाचार्य – धन्य भाग्य उस गोमाता का, उस स
पाण्डे का, उसकी कन्या और व्रजवासियों का!

स्वरूप – गोवर्धन आकर तुम मेरा प्राकट्य करा मुझे पा
बैठाओ और मेरी सेवा की समस्त व्यवस्था करो।

(एकाएक पीछे की दीवाल का यह सारा दृश्य विलुप्त
जाता है। वल्लभाचार्य हड़बड़ाकर अपनी शय्या से उठते हैं। उ
समय नेपथ्य से एक गीत की ध्वनि आती है। वल्लभाचार्य शय
त्यागकर खड़े होते हैं और अत्यन्त भावपूर्ण मुद्रा से इस गीत
सुनते हैं। अब वल्लभाचार्य नीचे के अंग में धोती धारण किये
हैं। दीपक के मन्द प्रकाश में भी एक अद्भुत प्रकार का आन
और उल्लास उनके मुख पर दृष्टिगोचर होता है।)

चकई री चल चरण सरोवर जहाँ न प्रेम वियोग।
जहँ भ्रम–निसा होति नहिं कबहूँ सो सायर रस जोग।।
जहाँ सनक सिव हंस मीन मुनि नख रवि प्रभा प्रकास।
प्रफुलित कमल निमिष नहिं ससि डर गुंजत निगम सुवास।

(लघुयवनिका)

दूसरा दृश्य

स्थान – झारखण्ड में वल्लभाचार्य के झोपड़े के निकट
मैदान।

समय – प्रातःकाल।

(एक ओर दूर पर झोपड़े के बाहरी भाग का कुछ अंश दिखायी देता है। मैदान में पलास के वृक्षों की बहुतायत है, उनमें वसन्त के कारण पत्ते न होकर केसरी रंग के फूल–ही–फूल हैं। पलास के इस मैदान में दामोदरदास हरसानी, कृष्णदास मेघन, वासुदेवदास छकड़ा, माधोभट्ट काश्मीरी और जादवेन्द्रदास कुम्हार बैठे हुए होली गा रहे हैं। पाँचों युवक हैं। वासुदेवदास छकड़ा को छोड़ शेष चारों गेहुँए वर्ण और साधारण शरीर के हैं। वासुदेवदास छकड़ा खूब ऊँचा, पूरा और मोटा–ताजा व्यक्ति है। सभी नीचे के शरीर पर धोती और ऊपर के शरीर पर बगलबंदी धारण किये हुए हैं।)

व्रज में हरि होरि मचाई।

इततें आई सुघर राधिका उत तें कुँअर कन्हाई।
हिल मिल फाग परस्पर खेलैं सोमा बरनि न जाई।।
नंद–धर बजत बधाई।।1।। व्रज.

बाजत ताल मृदंग बाँसुरी बीना ढफ सहनाई।
उड़त अबीर गुलाल कुमकुमा, रह्यो सकल व्रज छाई।।
मानो मघवा झर लाई।।2।। व्रज.

ले ले रंग कनक पिचकारी सम्मुख सबै चलाई।
छिरकत रंग अंग सब भीजै झुक–झुक चाचर गाई।।
परस्पर लोग लुगाई।।3।। व्रज.

राधा ने सेन दई सखियन को, झुंड–झुंड घिरि आई।
लपट झपट गई स्यामसुँदर सौ, परबस पकड़ लै आई।।
लालजी को नाच नचाई।।4।। व्रज.

छीन लई मुरली पीताम्बर सिर तें चुनरि उढ़ाई।
वेनी भाल नयन बिच काजर नकबेसर पहराई।।
मानो नई नार बनाई।।5।। व्रज.

मुसकत हो मुख मोड़–मोड़ कै कहाँ गई चतुराई।
कहाँ गये तेरे तात नंदजी, कहाँ जसोदा माई।।
तुम्हें अब ले न छुड़ाई।।6।। व्रज.

फगुआ दिये बिन जान न पाओ कोटिक करो उपाई।
लैहूँ काढ़ कसर सब दिनकी, तुम चितचोर कन्हाई।।
बहुत दधि माखन खाई।।7।। व्रज.

रास बिलास करत वृंदावन जहाँ तहाँ जदुराई।
राधा स्याम जुगल जोरी पर दास सबै बलि जाई।।
प्रीति उर रही समाई।।8।। व्रज.

कृष्णदास मेघन – (गीत पूर्ण होने पर, वासुदेवदास छकड़ा से) कहो छकड़ा! तुम्हें तो अब भूख लग ही आयी होगी!

वासुदेवदास छकड़ा – भूख तो मुझे सदा बनी ही रहती है।

माधोभट्ट काश्मीरी – इतना अधिक खाने पर भी?

वासुदेवदास छकड़ा – यह तो अपनी–अपनी पाचन शक्ति का विषय है। फिर मैं शरीर से कितना काम करता हूँ! तुम तो बैठे–बैठे लिखा करते हो। जब कभी अधिक चलने का काम पड़ जाता है, तब तुम्हारा मुख देखने योग्य होता है?

दामोदरदास हरसानी – हाँ, भाई! इतना तो मानना ही होगा कि यह छकड़ा, जितना बोझ छकड़ा ढो सकता है, उतना ढोता है।

जादवेन्द्रदास कुम्हार – और छकड़े के दो बैल मिलकर भी जितना नहीं खा सकते, उतनायह अकेला खा भी जाता है।

वासुदेवदास छकड़ा – देखो, भाई! इस सम्बन्ध में बात न किया करो। तुममें से किसी की भी यदि मेरे खाने पर नजर लग गयी तो मेरी भूख बंद हो जायगी। यदि भूख बंद हुई तो खा न सकूँगा। यदि खा न सका तो इतना बोझ लेकर चल न सकूँगा और यदि मैं न चल सका तो यह पृथ्वी–परिक्रमा समाप्त हो जायगी।

दामोदरदास हरसानी – पृथ्वी–परिक्रमा क्यों समाप्त हो जायगी? यदि मनुष्य का छकड़ा साथ न रहा तो बैलों का छकड़ा साथ हो जायगा।

वासुदेवदास छकड़ा – पर जहाँ मनुष्य का छकड़ा चलता है, वहाँ कभी बैलों का छकड़ा चल सकता है? कैसे–कैसे बीहड़ मार्गों से चलते हुए यह पृथ्वी–परिक्रमा हो रही है।

कृष्णदास मेघन – हाँ, इसमें तो संदेह नहीं।

दामोदरदास हरसानी – और देखो तो! इस पृथ्वी–परिक्रमा के लिये हम पाँचों का कैसा समुदाय इकट्ठा हुआ है और कैसा हमारा भाग्य चमका है।

कृष्णदास मेघन – हाँ, वासुदेवदास छकड़ा सारा शारीरिक कार्य करते हैं। माधोभट्ट काश्मीरी समस्त बौद्धिक कार्य, लेखक ठहरे न! भोजन में भोज्य–पदार्थों के पश्चात् सबसे अधिक आवश्यक पात्र होते हैं, वे नित नये बनाते हैं जादवेन्द्रदास कुम्हार! और हरसानी जी आप तथा मैं.....

वासुदेवदास छकड़ा – (बीच में ही) दोनों सर्वथा निरर्थक!

दामोदरदास हरसानी और कृष्णदास मेघन – (हँसते हुए एक सार) ऐसा !

वासुदेवदास छकड़ा – इसमें भी कोई संदेह है! आप दोनों का काम ही क्या है?

जादवेन्द्रदास कुम्हार – महाप्रभु के संग रहना क्या छोटा काम है?

माधोभट्ट काश्मीरी – फिर हरसानीजी को तो महाप्रभु ने कितना सुन्दर नाम दिया है...दमला! और महाप्रभु कहते हैं कि पुष्टि–सम्प्रदाय का यह मार्ग ही उन्होंने दमला के लिये प्रकट किया है।

दामोदरदास हरसानी – यह तो महाप्रभु की कृपा, उदारता और महानता है।

कृष्णदास मेघन – हाँ, ऐसे कृपालु, उदार और महान् इस विश्व में कौन है?

दामोदरदास हरसानी – वर्तमान काल में नहीं; भूतकाल में भी संसार में कौन ऐसे कृपालु, उदार और महान् हुए?

जादवेन्द्रदास कुम्हार – और भविष्य में भी कोई होने वाले नहीं हैं।

माधोभट्ट काश्मीरी – फिर कितना सादा जीवन है उनका!

वासुदेवदास छकड़ा – बिना पदत्राणों के कठिन–से–कठिन पर्वत–पथों तक को पार करना।

जादवेन्द्रदास कुम्हार – हर प्रकार की ऋतु में एक धोती और एक उपरना।

कृष्णदास मेघन – थोड़ा–सा प्रसादी भोजन।

दामोदरदास हरसानी – पूर्ण पुरुषोत्तम स्वयं अवतीर्ण हुए हैं।

माधोभट्ट काश्मीरी – और इस सादगी के साथ महान् विद्वत्ता।

कृष्णदास मेघन – और विद्वत्ता के संग असीम भगवत्प्रेम!

जादवेन्द्रदास कुम्हार – और भगवत्प्रेम के साथ अपूर्व भक्तवत्सलता!

दामोदरदास हरसानी – इसी...इसी कारण तो हम साथी ही उन पर मुग्ध नहीं हैं, परन्तु जहाँ पधारते हैं, सारा जनसमुदाय मुग्ध होकर बावरा–सा हो जाता है।

वासुदेवदास छकड़ा – हाँ, दर्शन पाते ही आबाल युवा–वृद्ध नर–नारी सब बावरे हो जाते हैं।

(वल्लभाचार्य का प्रवेश)

वल्लभाचार्य – साथियों! हमारी पृथ्वी–परिक्रमा स्थगित हो गयी।

दामोदरदास हरसानी – (आश्चर्य से) स्थगित हो गयी?

कृष्णदास मेघन – (आश्चर्य से) पृथ्वी–परिक्रमा स्थगित हो गयी!

दामोदरदास हरसानी – यह क्यों...यह क्यों, महाप्रभु!

वल्लभाचार्य – दमला! स्वप्न में भगवदादेश हुआ है – पृथ्वी–परिक्रमा स्थगित कर व्रजमण्डल में गोवर्धन पर आने पर।

माधोभट्ट काश्मीरी – (उत्सुकता से) भगवदादेश, महाप्रभु!

वल्लभाचार्य – हाँ, भगवदादेश।

दामोदरदास हरसानी – प्रयोजन!

वल्लभाचार्य – गोवर्धन पर भगवान् स्वयं श्रीगोवर्धननाथजी के स्वरूप में प्रकट हो रहे हैं।

पाँचों – (आनन्दातिरेक से एक साथ) ऐसा, महाप्रभु!

वल्लभाचार्य – हाँ, साथियों! मुझे आदेश हुआ है – गोवर्धन पर जाकर गोवर्धननाथजी के प्रकट कराने, उनके पाट बैठाने और उनकी सेवा की व्यवस्था करने का।

पाँचों – (उसी मुद्रा में फिर एक साथ) धन्य है, धन्य है, महाप्रभु!

वासुदेवदास छकड़ा – और हम सब धन्य नहीं हैं!

माधोभट्ट काश्मीरी – सारा संसार इससे धन्य हो जायगा।

(वल्लभाचार्य आनन्दातिरेक के कारण स्वयं गाते हैं, जिसे उनके पाँचों साथी दुहराते हैं।)

जो पै चोंप मिलन की होय।
तो क्यों रह्यो परै बिनु देखे लाल करो किन कोय।।
जो पै विरह परस्पर ब्यापै तो कछु जिये रमै।
लोक–लाज कुल की मर्जादा एको चित न गनै।।
कुम्भनदास जाहि तन लागी और न कछू सुहाय।
गिरधरलाल तोहि बिनु देखे पल छिन कल्प बिहाय।।

(लघुयवनिका)

तीसरा दृश्य

स्थान – गोवर्धन पर्वत पर श्रीनाथजी का मंदिर।

समय – प्रातःकाल।

(पीछे की ओर गोवर्धन पर्वत का कुछ भाग दिखायी पड़ता है। उसके आगे श्रीनाथजी के मंदिर का कुछ हिस्सा दृष्टिगोचर होता है। मंदिर के बाहर खुली जगह है, जिसमें मंदिर के निकट की जगह का थोड़ा–सा भाग रिक्त है, इसके आगे की जगह में मंदिर की ओर मुख किये दर्शनार्थियों का एक समुदाय एकत्रित है।

इनमें नर और नारियाँ दोनों हैं। श्रीनाथजी के मंदिर के पट इस समय बंद हैं। दामोदरदास हरसानी, कृष्णदास मेघन, माधोभट्ट काश्मीरी, वासुदेवदास छकड़ा तथा जादवेन्द्रदास कुम्हार आते हैं और दर्शनार्थियों का जो जनसमुदाय एकत्रित है, उसी में बैठ जाते हैं। इसके बाद सद्दू पाँडे आते हैं। सद्दू पाँडे अत्यन्त वृद्धावस्था और गेहुँए वर्ण के ऊँचे पूरे व्यक्ति हैं, परन्तु शरीर दुर्बल हो गया है। नीचे के शरीर पर धोती और ऊपर के शरीर पर बगलबंदी पहने हैं, उत्तरीय सिर पर बाँधे हैं। ललाट पर मोटा वल्लभसम्प्रदाय का कुमकुम का लाल तिलक है, जिसके बीच में गोपीचन्दन के श्वेत छापे हैं।)

सद्दू पाँडे – (मन्दिर के सामने जो स्थान रिक्त है, उसमें इस प्रकार आड़े ढंग से खड़े हो, जिससे मन्दिर की ओर पीठ भी नहीं होती और जनसमुदाय को वे तथा जनसमुदाय उन्हें देख सकता है) व्रजवासिन को, भइया हो, बड़ो भाग है। नन्दनन्दन को या व्रजभूमि ऐसी प्रिय हती कि उनने कह्यो हतो 'व्रज तज अनत न जाहि हौं' सो भइया हो, नन्दनन्दन तो सदा याही ठौर रहत रहे। अब वे श्रीनाथजी के स्वरूप में प्रगट भये हैं। तुम सब जानत हो संवत् 1466 की सावन सुदी 5 को मोकूँ सर्वप्रथम श्रीनाथजी की ऊर्ध्व भुजा के दर्शन भये हते। ये दर्शन भये हते मेरी धूसर गौ की कृपा सों। या दर्शन के पाछे मैं आन्योरगाँव के वृद्ध जनन को या ठौर ले गयो, जहाँ श्रीनाथजी की ऊर्ध्व भुजा प्रकटी हती। फेर हम सबन ने दुग्ध सो वा भुजा को स्नान कराये और हम सब या निर्णय पर पहुँचे कि यो वोही देव है जाने द्वापर में गिरिराज को अँगुरी पर धार या बूड़त व्रज और बूड़त व्रजवासिन की रच्छा करी हती। फेर संवत् 1535 के बैसाख कृष्ण एकादशी को हम सबन कौ श्रीनाथजी ने स्वतः मुखारविन्द के दर्शन दीये। ता पाछे यहाँ स्वामी माधवानन्द

जी महाराज पधारे और उनहूँ ने बहुत दिनाँ तक कन्दरा में ही स्थित श्रीनाथजी की सेवा कीनी। या संवत् 1549 में जब पृथ्वी–परिक्रमा करत करत श्रीआचार्यजी महाप्रभु झारखण्ड पहुँचे, तब फाल्गुन सुदी एकादशी को श्रीनाथजी ने श्रीआचार्यजी महाप्रभुन को स्वप्न में दर्शन दे यह आज्ञा दई कि वे गोवर्धन आय के श्रीनाथजी को सगरो स्वरूप प्रकटाय उन्हें यहाँ पाट बैठायें। भइया हो, आज हम व्रजवासिन को अहोभाग्य कि श्रीनाथजी पाट बैठे हैं और नन्दनन्दन के व्रज में पुनः प्रकट होइबे पै वैसो ही नन्द महोत्सव यहाँ होयगो जैसो द्वापर में गोकुल में भयो हतो। भोग सरि रहे हैं अब प्रथम कुम्भनदासजी कीर्तन करिहैंगे जिन्हें श्रीआचार्यजी महाप्रभु ने श्रीनाथजी के प्रथम कीर्तनियाँ नियुक्त करे हैं।

(सद्दू पाँण्डे का प्रस्थान और कुम्भनदासजी तथा उनके साथ के कुछ वाद्य–वादकों के संग पुनः प्रवेश। कुम्भनदासजी अधेड़ अवस्था के कुछ साँवले रंग के ऊँचे पूरे किन्तु दुबले शरीर के व्यक्ति हैं। वेशभूषा सद्दू पाँडे के सदृश। मन्दिर के सम्मुख के रिक्त स्थान के एक ओर कुम्भनदासजी तँबूरा लेकर बैठते हैं। उनके साथी वाद्य–वादक उनके पीछे बैठते हैं। सद्दू पाँडे जनसमुदाय में बैठ जाते हैं। कुम्भनदासजी कीर्तन आरम्भ करते हैं। कुम्भनदासजी के कीर्तन का प्रथम शब्द उच्चारित होते ही श्रीनाथजी के मंदिर के पट खुलते हैं और श्रीनाथजी के दर्शन होते हैं। श्रीनाथजी का वही स्वरूप है, जो इस समय श्रीनाथद्वारे में प्रतिष्ठित है। श्रीनाथजी के वस्त्र केशरी रंग के हैं। सारे आभूषण गुंजा के हैं। सिर पर मोरपंख है। श्रीनाथजी की मूर्ति के सम्मुख एक छोटा–सा काष्ठ का पालना है, जिसमें श्रीनाथजी की गोद के ठाकुरजी झूल रहे हैं। इस पालने के दोनों ओर नन्दराय और

यशोदा के वेश में दो वैष्णव बैठे हुए पालना झुला रहे हैं। श्रीवल्लभाचार्यजी खड़े हुए पंखा झल रहे हैं।)

जनसमुदाय – श्रीगोवर्धननाथ की जय। महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य की जय।

(बार–बार उच्च स्वर से जयघोष होता है।)

भयो सुत नन्द के चलो व्रजजन सबै।
होत मंगल, सकल जगत कौ तिमिर मिटि गयो,
तन कौ त्रिविध ताप सुन्यौ काननि जबै।।
उड़त नवनीत, दूध, दधि, हरद, तेल,
बहि चली आतुर सिंधु सरिता सबै।।
'दास कुंभन' प्रगट गिरिवरधरन
यहै सुख कोउ दिन भयो नाहीं कबै।।

(व्रजनारियाँ सुन्दर श्रृंगार किये हुए हाथों में थाल लिये श्रीनन्दरायजी को बधाई देने आती है। इस समय कीर्त्तन हो रहा है।)

जुर चली है वधावन नंद महर घर सुंदर व्रज की बाला।
कंचन थार हार चंचल छबि कहि न परत तिहि काला।।
डहडेह मुख कुमकुम रँग रंजित राजत रस के ऐना।
कंजन पर खेलत मानो खंजन, अंजन जुत बने नैना।।
दमकत कंठ पदिक मनि कुंडल नवल प्रेम रँग बोरी।
आतुर गति मानो चंद उदै भये, धावत लिखित चकोरी।।
खसि खसि परत सुमन सीसनते, उपमा कहा बखानौ।
चरन चलन पर रीझि चिकुरबर, बरखत फूलन मानौ।।
गावत गीत पुनीत करत जग, जसुमति मंदिर आई।
बद्दन बिलौकि बलैयौ लै लै, देत असीस सुहाई।।

मंगल कलस निकट दीपावलि ठाँय ठाँय देख मन भूल्यो।
मानौ आगम नंद सुवन के सुवन फूल व्रज फूल्यो।।

(इन्हीं व्रजनारियों के साथ ब्रज के गोप–ग्वाल काँवरों में हरदी–मिश्रित दधि से भरे हुए मटके ले–लेकर आते हैं और हाथ में दूध भी लाते हैं। नन्दरायजी को दही का टीका करके दूध बधाई स्वरूप भेंट करते हैं। फिर आपस में दही छिड़कते हैं। नन्द–यशोदा सबको बधाई में वस्त्र आदि बाँटते हैं। तदनन्तर ब्रजंगनाएँ और ग्वाल आपस में झूमर खेलते हैं और खूब नाचते हैं। इस समय गान होता है।)

सब ग्वाल नाचैं गोपी गावै। प्रेम मगन कछु कहत न आवै।।
हमारे राय घर ढोटा जायो। सुनि सब लोग बधाये आयो।।
दूध दही धृत काँवरि ढोरी। तंदुल दूब अलंकृत रोरी।।
हरद दूध दधि छिरकत अंगा। लसत पीत पट वसन सुरंगा।।
ताल पखावज दुंदुभि ढोला। हँसत परस्पर करत कलोला।।
अजिर पंक गुल्फन चढ़ि आये। रपटत फिर पग न ठहराये।।
बारि बारि पट भूषण दीने। लटकत फिर महारस भीने।।
सुधि न परे को काकी नारी। हँसि हँसि देत परस्पर तारी।।
सुर विमान सब कौतुक भूले। मुदित त्रिलोक विमोहित फूले।।

(इतने में ही ढाढी अपनी ढाढिन को लिये हुए आते हैं और नन्दरायजी के वंश का बखान करते हुए बधाई माँगते हैं तथा नृत्य–गान करते हैं।)

हौ व्रज माँगनो जू व्रज तज अनत न जाऊँ।
बडडे भूपति भूतल महिमा दाता सुर सुजान।।
कर न पसारौं सीस न नाऊँ, या व्रज के अभिमान।।

सुरपति नरपति नाग लोकपति, मेरे रंक समान।
भाँति भाँति मेरी आसा पूजी, ये व्रज जन जिजमान।।
मैं व्रत करि करि देव मनाये, अपनी घरनि सपूत।
दियो विधाता सब सुखदाता, गोकुलपति के पूत।।
हौं अपनौ मनभावो लैहो, कित बौरावत बात।
औरन को धन घन ज्यों बरखत मो देखत हँसि जात।।
अष्ट सिद्धि नव निधि मेरे मंदिर तुव प्रताप व्रज ईस।
कहत कल्यान मुकुंद लाल की कमल धरो मम सीस।।

(इसी उत्सव के बीच शिवजी श्रीकृष्ण के दर्शनार्थ पधारते हैं। उनका डरावना रूप देखकर यशोदा अपने अंचल से श्रीनाथजी और पालने के ठाकुर को छिपा लेती है। शिवजी गाते हैं।)

बाला मैं जोगी जस गाया।
धन्य जसोमति तेरे तन को जिन ऐसा सुत जाया।।
गुनन बड़ा छोटा जिन जानौ, अलख पुरुष घर आया।
जाको ध्यान धरत हैं मुनि जन निगम खोज नहिं पाया।।

(शिव का गान सुनकर यशोदा कहती है) –

जो चाहे सौ लीजिये राउर करौ आपनी दाया।
देहु असीस मेरे या सुत को बाढ़े अविचल काया।।

(शिव कहते हैं –)

नौ हौं लैहौं पाट पटंबर, ना लैहौं कंचन माया।
अपने सुत के दरस दिखावो जो मोय गुरु ने बताया।।

(यह सुनकर यशोदा विनय करती है –)

विनती करत हो हाथ जोड़ मैं सुन योगिन के राया।
देखन न देहूँ तोहि दिगंबर, बालक जात दिठाया।।

(शिव आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहते हैं –)

जाकी दृष्टि सकल जग ऊपर सो क्यों जाय दिठाया।
अलख पुरुष है मेरा स्वामी सो तैने भवन छिपाया।।

(अन्त में यशोदा अपना आँचल हटा शिव को श्रीनाथजी और पलने के ठाकुरजी के दर्शन कराती है। शिव श्रृंगीनाद करते हैं और बस जाते हैं। अब वल्लभाचार्य आरती करते हैं। आरती के समय गान होता है।)

रानी तेरो चिर जीयो गोपाल।
बेगि बढ़ो बढ़ होय विरह लट महरि मनोहर बाल।।
उपजि पर्‌यो यह कूंख भाग्यबल समुद्र सीप जैसे लाल।
सब गोकुल केप्रान जीवन धन, बैरिन के उर साल।।
नाथ कितो जिय सुख पावत है, निरखत स्याम तमाल।
रज आरज लाग्या मेरी अँखियन, रोग दोष जंजाल।।
रानी तेरो.।।

(यवनिका)

तीसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान – गोकुल में ठकुरानी घाट पर वल्लभाचार्य की बैठक का शयनागार।

समय – रात्रि का तीसरा पहर।

(शयनागार में दीपक का मंद प्रकाश है, जिससे शयनागार और उसकी कुछ वस्तुएँ दीख पड़ती है। शयनागार के तीन ओर की भित्तियाँ स्वच्छ पुती हुई है, एक ओर एक चारपाई पर वल्लभाचार्य निद्रामग्न, उन्हीं के निकट भूमि पर दामोदरदास हरसानी

सो रहे हैं। पीछे की भित्ति पर एकाएक प्रकाश फैलता है,उस प्रकाश में श्रीनाथजी का स्वरूप दिखायी देता है। इसके सामने हाथ जोड़े नतमस्तक वल्लभाचार्य दीख पड़ते हैं। स्वरूप बोलता है।)

स्वरूप – 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' सूत्र के अनुसार समस्त सृष्टि में मेरे दर्शन के अनन्तर ब्रह्मवाद सिद्धान्त का वल्लभ! तुमने प्रस्थापन कर अपने शुद्धाद्वैत वाले पुष्टिमार्गीय सम्प्रदाय को विद्वान् दार्शनिकों के मन में प्रतिष्ठित कर दिया और मुझसे बिछुड़े जीव के लिये मुझे पुनः प्राप्त करने का सरल मार्ग भक्ति ही है, यह भी सिद्ध कर दिया। वह भक्ति यदि साकार की हो तो यह भक्तिमार्ग और सरल हो जाता है, यह भी तुमने प्रिय वल्लभ! प्रतिपादित किया तथा उस सगुण भक्ति के लिये मेरे आदेशानुसार गोवर्धन पर आ मुझे तुमने पाट भी बैठाया। परन्तु वल्लभ! अब और आगे बढ़ना है।

वल्लभाचार्य – क्यों प्रभो! क्या गोवर्धन पर आपकी सेवा में कोई त्रुटि हो रही है?

स्वरूप – नहीं, नहीं। मेरी सेवा सब प्रकार से सांगोपांग है।

वल्लभाचार्य – तब, नाथ!

स्वरूप – तुम्हारे सम्प्रदाय के 'श्रीकृष्णः शरणं मम' मंत्र का अर्थ तो जीव का मेरे शरण आना ही है न?

वल्लभाचार्य – अवश्य।

स्वरूप – तो प्रिय वल्लभ! इस शरण की और विशद व्याख्या आवश्यक है।

वल्लभाचार्य – अर्थात्।

स्वरूप – अर्थात्, यह कि मेरी लीला के लिये जो यह जगत् है और जिसे तुम सत्य कहते हो, उस जगत् में मेरी ही माया से व्याप्त मेरा ही अंश यह जीव अपना और अपने से सम्बन्धित

समस्त वस्तुओं का 'त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पयेत्' उक्ति के अनुसार मुझे ही समर्पित कर भगवद्गीता के सिद्धान्तों के अनुसार आचरण करे। इसके लिये 'श्रीकृष्णः शरणं मम' मंत्र के आगे एक और विशद व्याख्या वाले आत्मनिवेदन के मंत्र की आवश्यकता है। (कुछ रुककर) और... और इसी के साथ एक और आवश्यकता है।

वल्लभाचार्य – वह क्या, प्रभो!

स्वरूप – मेरी लीला के लिये जो यह सृष्टि है, इसमें कोई ऊँचा और कोई नीचा नहीं। खेल के लिये नाना प्रकार की जड़ और चेतन वस्तुओं की आवश्यकता होती है। सृष्टि की सर्वश्रेष्ठ रचना मानव है। मानवों में यह जीव पुरुष के रूप में, नारी के रूप में आता है और जाता है। अलग-अलग खेल के लिये भिन्न-भिन्न वर्णों और रूपों में उत्पन्न होता है। अतः मानवों में जो पुरुषों का ऊँचा और नारियों का नीचा स्थान माना जाता है, कुछ वर्णों का ऊँचा और कुछ वर्णों का नीचा स्थान समझा जाता है और नारियाँ तथा जो वर्ण नीचे माने जाते हैं, उन्हें जो वेदों के अधिकार से वंचित रक्खा गया है, यह भेदभाव तुम्हारी दीक्षाओं में नहीं रहना चाहिये।

(पीछे की दीवाल का सारा दृश्य लुप्त हो जाता है। चारपाई पर लेटे हुए वल्लभाचार्य हड़बड़ाकर उठते हैं और आँखें मलते हुए पास में सोये हुए दामोदरदास हरसानी को कहते हैं।)

वल्लभाचार्य – दमला...दमला!

दामोदरदास हरसानी – (हड़बड़ाकर उठते हुए) महाप्रभु!

वल्लभाचार्य – कुछ सुना?

दामोदरदास हरसानी – हाँ, महाप्रभु! नींद में ही कान में कुछ भनक पड़ी।

वल्लभाचार्य – कैसी?

दामोदरदास हरसानी – आपका किसी से कोई संवाद हो रहा था!

वल्लभाचार्य – किससे ?

दामोदरदास हरसानी – सो नहीं कह सकता!

वल्लभाचार्य – किस विषय पर?

दामोदरदास हरसानी – यह भी नहीं समझा।

वल्लभाचार्य – केवल भनक पड़ी, किससे संवाद हुआ और क्या, यह पता नहीं?

दामोदरदास हरसानी – हाँ, कृपानाथ! केवल कुछ सुना, परन्तु समझा नहीं।

वल्लभाचार्य – जैसी आज्ञा झारखण्ड में श्रीनाथजी ने गोवर्धन आकर अपने स्वरूप को प्रकटा पाट बिठाने की दी थी, वैसी ही दूसरी आज्ञा हुई 'श्रीकृष्णः शरणं मम' मंत्र की विशद और व्यापक व्याख्या करने के लिये आत्मनिवेदन के मंत्र की।

दामोदरदास हरसानी – धन्य है, आप महाप्रभु! और आपके कारण धन्य हो जायगी यह समस्त सृष्टि।

वल्लभाचार्य – और...और, दमला! एक आज्ञा और हुई है!

दामोदरदास हरसानी – वह कौन–सी नाथ!

वल्लभाचार्य – मानव–मानव में कोई विभेद न रखने की। पुरुषों और स्त्रियों तथा समस्त वर्णों के समान अधिकार देने की।

दामोदरदास हरसानी – मैंने कहा न, कृपानाथ! यह समस्त सृष्टि आपके कारण धन्य हो जायगी। आज तक किस आचार्य ने भेदरहित समान दीक्षा का प्रतिपादन किया था?

वल्लभाचार्य – परन्तु, दमला! मैं जो कुछ कर रहा है
भगवद् आज्ञा से।

दामोदरदास हरसानी – यही तो इस सोने में सुगन्ध का
कारण है।

वल्लभाचार्य – अब मैं इस आत्मनिवेदन के मंत्र का
निर्माण करूँगा, इसका नाम होगा ब्रह्मसम्बन्ध मंत्र और जानते हो
इसकी दीक्षा सर्वप्रथम किसे दी जायगी?

दामोदरदास हरसानी – कौन वह बड़भागी है, महाप्रभु

वल्लभाचार्य – किसी उच्च वर्ण के ब्राह्मण को नहीं।

दामोदरदास हरसानी – तब?

वल्लभाचार्य – तुम्हें दूँगा, तुम्हें! श्रीनाथजी के सानिध्य में।

दामोदरदास हरसानी – (गद्गद् स्वर से) मैं...मैं ऐ
भाग्यशाली!

वल्लभाचार्य – मैंने अनेक बार कहा नहीं दमला! य
पुष्टिमार्ग मैंने तेरे लिये प्रकट किया है।

(नेपथ्य में गान की ध्वनि आती है।)

वल्लभाचार्य – उषःकाल हो रहा है, ये नये कीर्तनियाँ
का स्वर है।

दामोदरदास हरसानी – इस सूर में तो विलक्षण प्रति
है, कृपानाथ!

वल्लभाचार्य – क्या पूछना है। (कुछ कहकर) सुनो, थो
ध्यान से सुनो, सूर क्या गा रहे हैं?

(नेपथ्य का गान स्पष्ट होता है।)

भजन सखि भाव भाविक देव।
कोटि साधन करौ कोऊ, तौ उन मानै सेव।।
धूमकेतु कुमार माँग्यो कौन मारग नीति।
पुरुष तैं त्रिय भाव उपज्यो, सबै उलटी रीति।।
बसन भूषन पलट पहरे, भाव सौं संजोय।
उलट मुद्रा दई अंकन, बरन सूधे होय।।
वेद विधि को नेम नाहीं, प्रीति की पहचान।
व्रज बधू बस किये मोहन, सूर चतुर सुजान।।
भज सखि।।

(लघुयवनिका)

दूसरा दृश्य

स्थान – गोवर्धन पर्वत पर श्रीनाथजी का मन्दिर।

समय – प्रातःकाल।

(दृश्य वैसा ही है, जैसा दूसरे अंक का तीसरा दृश्य था। मंदिर के बाहर की खुली जगह में एक ओर सूरदास, परमानन्ददास, कुंभनदास और कृष्णदास कीर्तनियों के रूप में बैठे हैं। चारों प्रौढ़ हैं, वेशभूषा चारों की एक–सी। ऊपर के अंग पर बगलबंदी, नीचे के अंग पर धोती, सिर पर व्रजवासियों का छोटा टोपा और ललाट पर वल्लभसम्प्रदाय का लाल कुमकुम का तिलक, जिसके बीच में गोपीचन्दन के श्वेत छापे। सूरदासजी के नेत्र बंद हैं। चारों कीर्तनियों के पीछे उनके साथ वाद्य–वादक है। मंदिर के निकट की जगह का कुछ भाग छोड़ शेष भाग में मंदिर की ओर मुँह किये दर्शनार्थी बैठे हैं। इनमें नर–नारियाँ दोनों ही हैं। इन्हीं में दामोदरदास हरसानी, कृष्णदास मेघन, माधोभट्ट काश्मीरी,

वासुदेवदास छकड़ा, यादवेन्द्रदास कुम्हार, सद्दू पाण्डे आदि भी हैं। श्रीनाथजी के मंदिर के पट बंद हैं। आकाश में पूर्णचन्द्र उदित है, जिसके प्रकाश से सारा दृश्य आलोकित है। दृश्य खुलते ही मंदिर के पट खुलते ही श्रीनाथजी के दर्शन होते हैं। शरदपूर्णिमा होने के कारण श्रीनाथजी के वस्त्र श्वेत हैं। पट खुलते ही सूरदासजी का गान आरम्भ होता है और मंदिर के सामने की खुली जगह में रास।)

घोष नागरी मंडल मध्य नाचत गिरधारी लाल
लेत गति अनेक भाँति चरन पटकनी।
गिडगिडता गिडगिडता ताता तत तत तत थेई
थेई थेई बीच बीच अधर मधुर मुरलिका मटकनी।।
भुज सों भुज जोर जोर लेत तान नवकिसोर
गावत श्रीराग मिल ग्रीव लहकिनी।
सूरदास प्रभु सुजान नंद नंदन कुँवर कान्ह
मदन मोहन छबि निरखत काम सटकनी।।

(सूरदास के गान के पश्चात् परमानन्ददास, कुम्भनदास और कृष्णदास के गान होते हैं और इन गायकों की भावनाओं के अनुसार हावभावपूर्ण रास चलता रहता है।)

नर्तत मंडल मध्य नंदलाल।
मोर मुकुट मुरली पीताम्बर गुंज वनमाल।।
ताल मृदंग संगीत बजत, ततथेई बोलत बाल।
उरप तिरप तान लेत नटनागर गंधर्व गुनि रसाल।।
बाम भाग वृषभान नंदिनी गजगति मंद मराल।
परमानंद प्रभु की छबि निरखत मेटत उरके साल।।

चलहु राधिके सुजान तेरे हित गुन निधान रास रच्यो कुँवर
कान्ह तट कलिंद नंदिनी।

नर्तत जुवती समूह रास रंग अति कौतूह बाजत रस मूल मुरलिका
आनंदिनी।।

बंसी बट निकट जहाँ परम रमन भूमि तहाँ सकल सुखद वहत
मलय वायु मंदिनी।।

जाती ईषद विकास कानन अतिशय सुवास, राका–निसि शरद
मास विमल चाँदिनी।।

कुंभनदास प्रभु निहार लोचन भरि घोष नारि नख–शिख सौन्दर्य
सीम दुख निकंदिनी।।

विलसो भुज ग्रीव मेलि भामिनी सुख सिंधु झेलि गोवर्द्धन धरन
केलि जगत बंदिनी।।

x x x

रास विलास रच्यो नागर नट।
जुर मंडल नर्तत व्रज वनिता, नवल निकुंज सुभग जमुनातट।।
उपजत तान बँधान सप्त स्वर बाजत ताल मृदंग बीन रट।
संनमुख ह्वै नाचत पिय प्यारी, लेत सुधंग चाल गति अटपट।।
रसिक बिहार निरख ससि हास्यों, सरद निसा भूल्यो अपनी अट।
कृष्णदास गिरधर श्रीराधा, राजत मेघ मानौ दामिनि घट।।

(चौथे गान के समाप्त होते ही रास बंद हो जाता है। फिर से सूरदासजी का कीर्त्तन आरम्भ होता है और इस कीर्त्तन के अन्तिम चरण के गाये जाते समय वल्लभाचार्य आकर श्रीनाथजी की आरती करते हैं –)

नटवर गति नृत्यत हैं, भक्तन उर परसत हैं,

पुलकित तन हरषत हैं, रास में लाल बिहारी।

बाजत ताल मृदंग उपंग बाँसुरी बीना स्वर तरंग

ग्रग्रता ग्रग्रता थुंग थुंग लेत छंद भारी।।

काटि काछिनी पीत सुरंग मोर मुकुट अति सुधंग

राख्यो अर्धभाग ललित सीस पेच सँवारी।।

आरति बारत जसोदा माय लेत कंठ उर लगाय

देखत सुर नर मुनि और रामदास बलिहारी।।

(यवनिका)

चौथा अंक

पहला दृश्य

स्थान – अड़ेल में वल्लभाचार्य की बैठक का एक कक्ष।

समय – रात्रि।

(कक्ष की दीवालों के कक्ष पक्का बना हुआ है, यह तो ज्ञात होता है, परन्तु इसी के साथ यह भी जान पड़ता है कि कक्ष छोटा–सा है और अत्यन्त साधारण, किन्तु स्वच्छ। कक्ष में जाजम की बिछावन है पर सफेद चादर और खोलियों से ढके हुए गद्दे–तकियों को छोड़ अन्य कोई सजावट नहीं है। अक्काजी गद्दी पर बैठी हुई है और गद्दी के नीचे उनकी ओर मुँह किये रजो। अक्काजी की अवस्था अब प्रौढ़ता की ओर जा रही है। वर्ण गौर, स्वरूप सुंदर, सादी साड़ी और चोली धारण किये हुए है। शरीर पर कोई भूषण नहीं, ललाट की लाल टिकली और कलाइयों की काँच की चूड़ियों से सौभाग्य दृष्टिगोचर होता है। रजो कुछ साँवले रंग की युवती है।)

अक्काजी – हाँ रज्जो! आज मेरे विवाह की बीसवीं वर्षगाँठ है। विवाह की इस वर्षगाँठ को विवाह तथा बीस वर्षों के इस वैवाहिक जीवन की कितनी बातें आज मुझे स्मरण आ रही हैं।

रजो – ऐसे दिवसों पर ऐसे दिवसों से सम्बन्धित जीवन की छोटी–छोटी घटनाओं का भी न जाने कितना स्मरण आता है।

अक्काजी – उनका विचार तो आजन्म ब्रह्मचर्य पालन कर भगवत्–सेवा और लोक–कल्याण करने का ही था।

रजो – जानती हूँ। आपने न जाने यह कितनी बार कहा है।

अक्काजी – जब दूसरी पृथ्वी–परिक्रमा कर रहे थे, उस समय पंढरीपुर में श्रीविट्ठलनाथजी ने विवाह करने का आदेश दिया।

रजो – और वह भी अकारण नहीं।

अक्काजी – हाँ, आदेश के साथ ही श्रीविट्ठलनाथजी ने कहा, तुम्हारे अनन्तर भक्तिमार्ग के प्रचारार्थ किसी योग्य उत्तराधिकारी की आवश्यकता है। अतः तुम्हें विवाह करना ही चाहिये।

रजो – और भगवदाज्ञा का उल्लंघन वे कैसे करते!

अक्काजी – किसी भी भगवदाज्ञा के उल्लंघन की बात वे स्वप्न में भी सोच सकते हैं? काशी आकर विवाह किया और यद्यपि अब हमारे विवाह को बीस वर्ष के लगभग व्यतीत हो गये, वे भी प्रौढ़ हो गये हैं, मैं भी प्रौढ़ता के निकट पहुँच रही हूँ, पर हमारा प्रणय वैसा ही है, जैसा उस दिन था, जिस दिन मेरे पिता मधुमंगलजी ने और मेरी माँ अत्रिम्मा ने उन्हें मेरा पाणिग्रहण कराया था। (कुछ रुककर) इसका भी कारण है, रजो!

रजो – (मुस्कराकर) पति–पत्नी के प्रणय का कारण पति–पत्नी के प्रणय के अतिरिक्त और क्या हो सकता है ?

अक्काजी – अन्य पति–पत्नियों के प्रणय का कारण पति–पत्नि के प्रणय अतिरिक्त चाहे कुछ न हो, पर हमारे प्रणय का तो एक अन्य कारण है ही।

रजो – वह आप आज ही बता रही हैं।

अक्काजी – वे सब कुछ भगवदादेश से भगवान् के लिये करते हैं, हमारा विवाह भी भगवान् के लिये हुआ, वे स्वयं भगवान् के लिये, मैं भी भगवान् के लिये, हमारा प्रेम भी भगवान् के लिये और हमारी संतति भी भगवान् के लिये।

रजो – अवतारी पुरुष हैं वे, इसमें तो संदेह ही नहीं है।

अक्काजी – इसमें क्या संदेह हो सकता है, ग्यारह वर्ष की अवस्था में वेदविद्या में पारंगत, चौदह वर्ष की अवस्था में समस्त भूमण्डल के शास्त्रार्थ में विजयी।

रजो – अद्‌भुत व्यक्ति है।

अक्काजी – सम्प्रदाय के सिद्धान्तों के प्रचार और दैवी जीवों के उद्धार के लिये तीन–तीन पृथ्वी–परिक्रमाएँ, जिनमें पहली परिक्रमा में नौ वर्ष तथा दूसरी और तीसरी परिक्रमा में छः–छः वर्ष लगे। इक्कीस वर्ष तक न झुलसानी धूप की और न लूकी चिन्ता, न मूसलाधार वृष्टि की और न कँपकँपाती शीत की।

रजो – और बिना पदत्राण के एक धोती पहने तथा एक उपरना ओढ़े।

अक्काजी – जितनी विद्वत्ता उतनी ही भक्ति, जितनी सादगी उतनी ही रसिकता।

रजो – दो एक–दूसरे से विरुद्ध गुणों का इकट्ठा समावेश।

अक्काजी – विद्वत्ता की शुष्कता में प्रेम का प्रवाह और जीवन की सादगी में कलाओं का शृंगार। फिर एक–दूसरे से विपरीत दिखाने वाली अन्य बातों का भी सामंजस्य बैठाया करते हैं।

रजो – जैसे?

अक्काजी – एक ओर 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' सूत्र के अनुसार जड़–चेतन समस्त सृष्टि में निराकार भगवान् के दर्शन करते हैं और दूसरी ओर यह कहते हैं कि जिस प्रकार तेजस्तत्त्व समस्त सृष्टि में व्याप्त होने पर भी उसके दर्शन सूर्य, चन्द्र, तारागण, ..., ... में ही होते हैं, उसी प्रकार ब्रह्म के सबमें व्याप्त होने पर भी उसके दर्शन प्रतिमा में (कुछ रुककर) और रजो! सारे देश में सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का प्रचार करने के पश्चात् अब अडेल के इस निवास में हो रही है ग्रंथ–रचना।

रजो – हाँ, देखती ही हूँ इस ग्रंथ–रचना में उनकी तल्लीनता।

अक्काजी – ब्रह्मसूत्र पर अणुभाष्य लिख डाला, भागवत पर सुबोधिनी टीका और वैष्णवों के लिये षोडश ग्रंथ, फिर पत्रावलम्बन और तत्त्वार्थ दीप निबन्ध आदि अनेक छोटे–बड़े ग्रंथ बड़े–से–बड़े विद्वानों का भी अनेक प्रकार से मार्ग प्रदर्शन करते हैं। कहते हैं, नाम–रूपात्मक इस शरीर को छोड़कर तो किसी–न–किसी दिन प्रभु–लीला में पहुँचेंगे, परन्तु सम्प्रदाय की परम्परा को सुरक्षित रक्खेगा यह सारा साहित्य, जो अड़ेल में लिखा जा रहा है।

रजो – उस परम्परा को सुरक्षित आपके ये दोनों पुत्र गोपीनाथ और विट्ठलनाथ तथा इनकी संतति न रक्खेगी?

अक्काजी – विवाह का उद्देश्य तो यही था, परन्तु... परन्तु, रजो, ... (चुप हो जाती है।)

रजो – परन्तु पर आप चुप क्यों हो गयी?

अक्काजी – क्या कहूँ?

रजो – क्यों, आपको अपनी संतति पर विश्वास नहीं है?

अक्काजी – नहीं, ऐसा नहीं है। गोपीनाथ और विट्ठलनाथ तो ठीक वायुमण्डल में पढ़ रहे हैं। परन्तु, रजो! जीवित संतति पर समय और उसके चारों ओर के वायुमण्डल का भी प्रभाव पड़ता है एवं अनेक बार इस संतति का परम्परा से विपरीत आचरण भी होता है। अतः सच्ची परम्परा की रक्षा साहित्य ही कर सकता है।

रजो – परन्तु...परन्तु, जब इस साहित्य को जीवित व्यक्तित्व मिल जाता है, तब इस साहित्य का जितना प्रभाव पड़ता है, उतना पोथियों में लिखित रहने से नहीं।

अक्काजी – इसीलिये तो श्रीविट्ठलनाथजी ने उन्हें विवाह की आज्ञा दी थी और उन्होंने विवाह किया भी।

रजो – तो यह संतति और साहित्य मिलकर इस सम्प्रदाय को सुरक्षित रक्खेंगे?

अक्काजी – फिर तो तुम्हें इन दोनों के साथ एक सर्वोपरि वस्तु को और जोड़ना होगा।

रजो – कौन–सी?

अक्काजी – श्रीनाथजी।

रजो – हाँ, वे तो सर्वोपरि है ही। (कुछ रुककर) पर फिर आप एक वस्तु को और भी सम्मिलित कीजिये।

अक्काजी – कौन–सी?

रजो – वे चौरासी बैठकें जो इन तीन पृथ्वी–परिक्रमाओं में पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक जहाँ–जहाँ श्रीमद्भागवत का उन्होंने सप्ताह किया, वहाँ–वहाँ संस्थापित हैं।

(कुछ देर निस्तब्धता)

रजो – हाँ, एक बात तो नित्य ही आपसे पूछने का स्मरण करती हूँ और भूल जाती हूँ।

अक्काजी – पूछो।

रजो – कुछ दिन पहले समाचार फैला था कि बादशाह सिकन्दर लोदी ने अपने चित्रकार होनहार को भेजकर महाप्रभु का चित्र बनवाया है। मैं उस समय यहाँ से कुछ दिन को चली गयी थी।

अक्काजी – यह समाचार सत्य है।

रजो – तो वह चित्र तो दिखाइये।

अक्काजी – वह चित्रकार उस चित्र को ले गया। उस चित्र में वे श्रीसद्भागवत का पाठ कर रहे हैं। माधोभट्ट काश्मीरी और कृष्णदास मेघन सम्मुख बैठे हैं और दामोदरदास हरसानी दण्डवत् कर रहे है। वह चित्रकार कहता गया है कि उसी चित्र पर से एक चित्र और बनाकर उनकी भेंट के लिये भेजेगा। देखें, वह चित्र कब आता है।

रजो – बादशाह का चित्रकार था, चित्र तो सुन्दर बना होगा।

अक्काजी – बहुत सुन्दर बना है।

रजो – और बादशाह पर उनका बड़ा प्रभाव होगा, इसीलिये मुसलमान होते हुए भी उसने अपने चित्रकार को भेजकर उनका चित्र बनवाया।

अक्काजी – हाँ, सुना है, बादशाह पर उनका बड़ा प्रभाव है।

(गोपीनाथ और विट्ठलनाथ का प्रवेश! गोपीनाथ की अवस्था लगभग ग्यारह वर्ष की और विट्ठलनाथ की लगभग सात वर्ष की है। गोपीनाथ का वर्ण कुछ साँवला और विट्ठलनाथ का गौर है। दोनों सुन्दर बालक हैं। दोनों सादी बगलबंदी और धोती पहने हैं। दोनों के चौड़ी शिखा है और ललाट पर कुमकुम का तिलक

जिसके बीच में गोपीचन्दन के छापे। गोपीनाथ अपने एक हाथ में श्रीकृष्णजी और दूसरे हाथ में राधा की प्रतिमाएँ लिये हैं। विट्ठलनाथ के हाथ में बालकृष्ण की मूर्ति है। ये प्रतिमाएँ धातु की हैं।)

विट्ठलनाथ – माँ...माँ, देखो, ये दादा कहते हैं, मैं छोटा हूँ इसलिये छोटे ठाकुरजी का श्रृंगार करूँ और ये बड़े हैं इसलिये ये बड़े ठाकुरजी का श्रृंगार करेंगे।

गोपीनाथ – मैं ठीक नहीं कहता माँ ?

अक्काजी – पर, बेटा, ठाकुरजी क्या छोटे और क्या बड़े!

विट्ठलनाथ – क्या छोटे और क्या बड़े! तुम्हीं देख लो माँ! दादा के हाथ के ठाकुरजी कितने बड़े हैं और मेरे हाथ के कितने छोटे!

अक्काजी – पर, बेटा! माप–तौल से ठाकुरजी की बड़ाई और छुटाई का निर्णय नहीं होता।

विट्ठलनाथ – तब!

अक्काजी – 'श्रीकृष्णः शरणं मम' तो हम दोनों के लिये ही कहते हैं न! और ब्रह्मसम्बन्ध का निवेदन मंत्र भी!

विट्ठलनाथ – हाँ, यह तो ठीक है।

अक्काजी – तब फिर स्वरूप में ठाकुरजी चाहे बड़े हों चाहे छोटे, सब एक–से हैं।

गोपीनाथ – पर, माँ! यह तो मुझसे झगड़ा करता है।

(वल्लभाचार्य का प्रवेश। वे अब प्रौढ़ हो गये हैं।)

वल्लभाचार्य – किस बात पर झगड़ा हो रहा है?

अक्काजी – (मुस्कराकर) बड़े और छोटे ठाकुरजी पर।

वल्लभाचार्य – (गद्दी पर बैठ गोपीनाथ और विट्ठलनाथ दोनों को अपनी गोद में बैठाते हुए) बेटा! ठाकुरजी कैसे बड़े और कैसे छोटे!

अक्काजी – यहीं तो मैंने इसे समझाया।

वल्लभाचार्य – बेटा! ठाकुरजी का स्वरूप चाहे बड़ा हो, चाहे छोटा, एक–से हैं। स्मरण नहीं है, दशावतार!

विट्ठलनाथ – भलीभाँति स्मरण है – मत्स्य, कूर्म, वाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि।

वल्लभाचार्य – और इन दशावतारों में से हम किन–किन की जयन्ती मनाते हैं?

गोपीनाथ – राम, कृष्ण, नृसिंह और वामन।

वल्लभाचार्य – ठीक! और इनमें नृसिंह थे बहुत बड़े और उनके ठीक विपरीत वामन बहुत छोटे।

गोपीनाथ और विट्ठलनाथ – (एक साथ) हाँ, यह तो ठीक है।

वल्लभाचार्य – अब बोलो, दोनों में कौन बड़ा और कौन छोटा। फिर श्रीकृष्ण तो पूर्ण पुरुषोत्तम हैं। गोपीनाथ के हाथ में जो श्रीकृष्ण का स्वरूप है, उसमें और विट्ठलनाथ! तेरे हाथ में जो श्रीकृष्ण का स्वरूप है, उसमें क्या अन्तर है। दोनों की ही नवधा भक्ति से वित्तजा, तनुजा और मानसी सेवा करनी है। नवधा भक्ति का वर्णन तो करो, विट्ठलनाथ!

विट्ठलनाथ –

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।

अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।।

वल्लभाचार्य – और गोपीनाथ! तुम वित्तजा, तनुजा और मानसी सेवा की व्याख्या करो।

गोपीनाथ – तनुजा सेवा शरीर द्वारा होने वाली सेवा है, वित्तजा सेवा जो भी धन–धान्य आदि पास में हैं, उसके द्वारा होने

वाली सेवा है और मानसी सेवा मन को प्रभु चरणों में तल्लीन क
मन की समस्त भावनाओं द्वारा होने वाली सेवा है।

वल्लभाचार्य – ठीक; अच्छा, अब गाओ तो तुम दोन
सूरदासजी का कलका पद।

रजो – हाँ, वे तो नित्य एक नये पद की रचना करते हैं।

अक्काजी – कम–से–कम एक नये पद की नित्य रचन
का तो उनका संकल्प है।

वल्लभाचार्य – और ये दोनों नित्य उनके उस पद व
कण्ठस्थ कर लेते हैं।

(गोपीनाथ और विट्ठलनाथ गाते हैं।)

मैया मोहिं बड़ौ कर लै री।
दूध दही माखन घृत मेवा जब माँगौं तब दै री।।
कछुक होस राखेहु जिन मेरी जोइ जोइ मोहि रुचै री,
होहुँ सबल सबहिन में जैसे सदा राहैं निरभे री।।
रंगभूमि में कंस पछारौ पीसि बहाऊँ बैरी,
सूरदास स्वामी की लीला मथुरा राजा बैरी।।

(लघुयवनिका)

दूसरा दृश्य

स्थान – जगन्नाथपुरी में जगदीश के मंदिर का एक भाग।

समय – मध्याह्न।

(पीछे की ओर जिस स्थान पर जगन्नाथजी, बलभद्र
और सुभद्राजी की मूर्तियाँ स्थापित हैं, वह स्थल तथा मूर्तियाँ दी
पड़ती है, परन्तु कुछ दूर पर उस स्थल के आगे उस स्थल
दीवाल दीख पड़ती है, जिसके बीचोबीच एक दरवाजा है। दरवा

खुला हुआ है और इसी दरवाजे से इन मूर्तियों के दर्शन होते हैं। इस दरवाजे और दीवाल के आगे एक–दूसरे की ओर मुख किये हुए आसनों पर पण्डितों के दो समुदाय बैठे हैं; एक समुदाय वैष्णवों का है और दूसरा स्मार्तों का। यह उनके ललाट पर तिलकों से जान पड़ता है। दोनों समुदायों के बीच में पुरी के राजा बैठे हैं। ये सब लोग इस प्रकार बैठे हुए हैं कि किसी की पीठ मूर्तियों की ओर नहीं है।)

राजा – हाँ, मैं पुनः आप पण्डितों के सम्मुख अपने चारों प्रश्न उपस्थित करता हूँ।

(दरबान का प्रवेश)

दरबान – श्रीवल्लभाचार्य पधार रहे हैं।

राजा – यह और भी अच्छा हुआ। इस समय उनकी बड़ी प्रसिद्धि है। वे भी मेरे प्रश्नों को सुन लेंगे और उनसे भी प्रार्थना करूँगा कि वे भी मेरे प्रश्नों का उत्तर देने की कृपा करें।

(वल्लभाचार्य का दामोदरदास हरसानी, कृष्णदास मेघन, वासुदेवदास छकड़ा, माधोभट्ट काश्मीरी और यादवेन्द्रदास कुम्हार के साथ प्रवेश। वल्लभाचार्य के साथी भी अब प्रौढ़ हो गये हैं। सारा समुदाय खड़ा हो वल्लभाचार्य को प्रणाम करता है, वैष्णव अधिक प्रेम से। राजा दण्डवत् करता है। वल्लभाचार्य दोनों हाथ उठा सबको आशीर्वाद देते हुए जिस स्थान पर मूर्तियाँ विराजमान हैं उस स्थान के दरवाजे तक जाकर दरवाजे की देहरी पर सिर रख अपने सब साथियों के साथ मूर्तियों को दण्डवत् करते हैं और फिर सब आगन्तुक वैष्णवों के समुदाय में बैठते हैं।)

राजा – (हाथ जोड़कर) धन्यभाग्य मेरा महाप्रभु! आप यहाँ पधारे।

वल्लभाचार्य – मैं अपना धन्यभाग्य मानता हूँ, राजन्! बहुत काल पश्चात् मुझे फिर जगन्नाथजी के दर्शन हुए। (कुछ रुककर) कोई शास्त्रार्थ हो रहा है?

राजा – हाँ, महाप्रभु! बहुत काल से मेरे कुछ प्रश्नों पर शास्त्रार्थ चल रहा है। मुझे अपने प्रश्नों के विद्वानों ने भिन्न–भिन्न उत्तर दिये हैं और मुझे अब तक उन उत्तरों से संतोष नहीं हुआ है।

वल्लभाचार्य – क्या प्रश्न हैं आपके?

राजा – मेरे चार प्रश्न हैं, महाप्रभु!

वल्लभाचार्य – कैसे?

राजा – पहला प्रश्न है, मुख्य और प्रामाणिक शास्त्र कौन हैं?

वल्लभाचार्य – अच्छा!

राजा – दूसरा प्रश्न है, मुख्य और प्रामाणिक देव कौन हैं?

वल्लभाचार्य – तीसरा?

राजा – कौन–सा मंत्र फलदायक है?

वल्लभाचार्य – और चौथा ?

राजा – सबसे सरल और उत्तम कर्म क्या है?

वल्लभाचार्य – (गम्भीरता से विचारते हुए) प्रश्न तो बड़े महत्त्वपूर्ण हैं और आपने कहा ही कि आपको इन प्रश्नों के भिन्न–भिन्न प्रकार के उत्तर मिले हैं, जिनसे आपको संतोष नहीं हुआ।

राजा – हाँ, महाप्रभु!

वल्लभाचार्य – (और भी गम्भीरता से विचारते हुए) तो इन प्रश्नों के उत्तर के सम्बन्ध में एक काम किया जाय!

राजा – कौन–सा महाप्रभु!

वल्लभाचार्य – कागज, कलम और दावात, भगवान् जगन्नाथ के सम्मुख रख दी जाय, वे आपको उत्तर लिख देंगे।

पण्डित–समुदाय में से अधिकांश – (अत्यन्त आश्चर्य से) ऐसा...ऐसा भी हो सकता है?

वल्लभाचार्य – क्यों? आप भगवान् के दर्शन करते हैं और भगवान् के अस्तित्व में विश्वास नहीं। रखिये आप कागज, कलम, दावात भगवान् के सम्मुख कर दीजिये पट बंद; हम प्रार्थना करेंगे और यदि हममें से एक की प्रार्थना में भी सचाई होगी तो भगवान् अवश्य उत्तर लिखेंगे।

राजा – जैसी...जैसी...आज्ञा, महाप्रभु की।

(पुरोहित श्रीकृष्ण गुच्छीकार कागज, कलम और दावात लेकर जगदीश की मूर्तियों के निकट जाता है और उन्हें वहाँ रखकर लौट आता है। पट बंद किये जाते हैं और वल्लभाचार्य प्रार्थना में एक गीत गाते हैं, जिसे राजा और कुछ पण्डित तल्लीनता से दुहराते हैं, कुछ अनमने–से और कुछ चुपचाप रहते हैं।)

तिहारे चरण कमल को माहात्म्य, सिव जाने के गौतम–नारी।
जटाजूट मध्य पावनी गंगा, अजहूँ लिये फिरत त्रिपुरारी।।
कै जाने सुकदेव महामुनि, कै जाने सनकादिक चार।
कै जाने वैरोचनको सुत, सर्वसु दे मेटी कुलगार।।
कै जाने नारद मुनि ज्ञानी, गुप्त फिरत त्रैलोक मझार।
कै जाने हरिजन परमानंद, जिनके हृदय बसत भुज चार।।
तिहारे.।।

वल्लभाचार्य – (प्रार्थना पूर्ण होने पर) जाइये दोनों समुदायों में से कुछ लोग और ले आइये उस कागज को।

(कुछ लोग जाते हैं और एक लिखा हुआ कागज वल्लभाचार्य के सम्मुख रखते हैं।)

वल्लभाचार्य – लीजिये, राजन्! भगवान् जगन्नाथ ने आपके प्रश्नों का उत्तर लिख दिया है। (कागज राजा को देते हैं।)

राजा – (कागज पढ़ते हुए)

"एकं शास्त्रं देवकीपुत्रगीतमेको देवो देवकीपुत्र एव।
मन्त्रोऽप्येकस्तस्य नामानि यानि कर्माप्येकं तस्य देवस्य सेवा।।"

(कुछ देर तक अत्यधिक आश्चर्यमय निस्तब्धता)

एक स्मार्त – परन्तु...परन्तु, यह कैसे हुआ?

वल्लभाचार्य – मैंने कहा था न, सच्ची प्रार्थना भगवान् अवश्य सुनेंगे।

वही स्मार्त – किन्तु हस्तविहीन जगदीश यह श्लोक लिख भी किस प्रकार सकते हैं?

वल्लभाचार्य – पण्डितवर! जान पड़ता है, आप ब्रह्म के एक वर्णन को विस्मृत कर गये।

वही स्मार्त – किस वर्णन को?

वल्लभाचार्य – अपाणिपादो...

बिनु पद चलै सुनै बिनु काना। कर बिनु कर्म करै विधि नाना।।
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी वक्ता बड़ जोगी।।

वही स्मार्त – जो कुछ हो मुझे तो इसमें किसी कुचक्र की गंध आती है।

राजा – (क्रोध से) क्या, क्या बक रहे हैं आप?

पुरोहित श्रीकृष्ण गुच्छीकार – इनकी शंका की निवृत्ति के लिये पुनः एक कागज रखा जाय!

वल्लभाचार्य – हम आग्रहवादी नहीं हैं। आपको जैसा उचित जँचे, कीजिये।

पुरोहित श्रीकृष्ण गुच्छीकार – (उसी स्मार्त से) चलिये, पण्डितजी! आप ही मन्दिर के भीतर चलिये। देख लीजिये कोई लिखा हुआ कागज ही तो भगवान् के सम्मुख नहीं रखा जाता और कोई मानव तो वहाँ छिपा नहीं बैठा है। आप स्वयं कागज, कलम, दावात जगन्नाथजी के सम्मुख रख दीजिये।

(वही स्मार्त उठता है और पुरोहित श्रीकृष्ण गुच्छीकार के संग जहाँ मूर्तियाँ प्रतिष्ठत हैं, उस स्थल पर जा उसका सब प्रकार से निरीक्षण कर कागज,कलम और दावात जगन्नाथजी की मूर्ति के सम्मुख रख पुरोहित श्रीकृष्ण गुच्छीकार के संग लौट आता है। फिर पट बंद कर दिये जाते हैं। वल्लभाचार्य पुनः प्रार्थना में गान करते हैं। इस बार उस स्मार्त को छोड़ शेष सभी लोग तल्लीनता से इस प्रार्थना में वल्लभाचार्य का साथ देते हैं।)

हरि रस तब ही तो जाय पैये।
स्वाद विवाद हर्ष आतुरता, इतने दंड जो सहिये।।
कोमल वचन दीनता सब सों, सदा प्रफुल्लित रहिये।
गए नहिं सोच आये नहिं आनंद, ऐसे मारग बहिये।।
ऐसी जो आवे जिय माहीं, ताके भाग्यकी का कहिये।
अष्ट सिद्धि सूर स्याम पै, जो चहिये सो लहिये।।
हरि रस.।।

वल्लभाचार्य – (गीत पूर्ण होने पर उसी स्मार्त से) जाइये, अब आप ही लेकर आइये उस कागज को!

(वही स्मार्त उठकर अकेला मंदिर में जाने लगता है।)

राजा – (पुरोहित श्रीकृष्ण गुच्छीकार से) पुरोहितजी! आप भी इनके साथ जाइये।

(वह स्मार्त और पुरोहित श्रीकृष्ण गुच्छीकार जाते हैं। भीतर दोनों में कुछ छीना–झपटी–सी दिखायी देती है। पुरोहित श्रीकृष्ण गुच्छीकार शीघ्रता से एक कागज लिये हुए आता है। वह स्मार्त धीरे–धीरे उसके पीछे।)

पुरोहित श्रीकृष्ण गुच्छीकार – (अपने हाथ के कागज को राजा को देते हुए) महाराज! यह पुनः भगवान् ने लिखकर दिया है। पण्डितवर तो इसे भोजन के सदृश खा लेना चाहते थे। बड़ी कठिनाई से इसे बचाकर ला सका हूँ।

(पुरोहित श्रीकृष्ण गुच्छीकार बैठ जाता है और वह स्मार्त भी मुँह लटकाकर)

राजा – (कागज को पढ़ते हुए)

"यः पुमाम् पितरं द्वेष्टि तं विद्यादन्यरेतसम्।
यः पुमानीश्वरं द्वेष्टि तं विद्यादन्त्यजोद्भवम्।।"

(कुछ रुककर उस स्मार्त से) कहिये, पण्डितवर! अब आपका कहना है? (जब वह कोई उत्तर नहीं देता) देखिये, इस देश में कभी धर्मान्धता नहीं रही, साथ ही हर प्रकार की सहिष्णुता, इसीलिये यहाँ एक ओर यदि ईश्वरवादी रहे तो दूसरी ओर चार्वाक के सदृश घोर निरीश्वरवादी थे। हमारा निरीश्वरवादियों से कोई झगड़ा नहीं। यदि एक ओर हम अस्तिकों को अपने मत पर आस्था रखने और उसका प्रचार करने का अधिकार है तो दूसरी ओरइसी प्रकार का अधिकार नास्तिकों को भी है। परन्तु पण्डितवर! पंचायत का प्रसंग तब उपस्थित हो जाता है, जब नास्तिक अविश्वासी आस्तिक

विश्वासी जामा पहन आस्तिक जगत् में विस्फोट करने का प्रयत्न करता है। इसे मैं पाखण्ड कहता हूँ और मंदिर के सदृश पवित्र स्थान में इस प्रकार के पाखण्ड का कोई स्थान नहीं। अच्छा यही है कि अब आप यहाँ से विदा हो जायँ।

(वह स्मार्त सिर झुकाये हुए शीघ्रता से जाता है। एक भी व्यक्ति उसका साथ नहीं देता। वल्लभाचार्य को छोड़ कुछ देर सब लोग उसी ओर देखते रहते हैं, वल्लभाचार्य मूर्तियों की ओर। कुछ देर निस्तब्धता।)

राजा – (पुरोहित श्रीकृष्ण गुच्छीकार से) पुरोहितजी! लाइये, पूजन की सामग्री। मैं महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य का पूजन कर अपना जन्म कृतार्थ करूँगा।

(पुरोहित श्रीकृष्ण गुच्छीकार का शीघ्रता से प्रस्थान। फिर कुछ देर निस्तब्धता। पुरोहित श्रीकृष्ण गुच्छीकार का पूजन की सामग्री लेकर पुनः प्रवेश।)

राजा – (खड़े हो वल्लभाचार्य को तिलक करते हुए गद्गद् स्वर से) धन्य है...धन्य है, आपको आचार्य महाप्रभु! आपने मेरी समस्त शंकाएँ मिटा मेरे जन्म को सार्थक कर दिया। धन्य...धन्य है यह भूमि और...और धन्य...धन्य है यह कालजय सृष्टि के दैवी जीवों का कल्याण करने के लिये आपके रूप में भगवान् स्वयं अवतीर्ण हुए हैं।

(राजा जब वल्लभाचार्य की कर्पूर–आरती करता है, तब सारा जनसमुदाय गाता है।)

जो पै श्रीवल्लभ प्रगट न होते।

भूतल भूषण विष्णु स्वामि पथ शृंगार शास्त्र सब रोते।

प्रेम स्वरूप प्रकट पुरुषोत्तम, बिन पाये कैसे जीते।।

सेवा काज लाल गिरधरकी, कुसुम दाम कैसे पीते।।
कर आसरो रहे जे निज जन, ते भव पार क्यों होते।
सगुणदास सिद्धान्त बिना यह, उर–कपाट क्यों खोते।।
जो प श्रीवल्लभ.।।

(लघुयवनिका)

तीसरा दृश्य

स्थान – वृन्दावन में वंशीवट के निकट वल्लभाचार्य की बैठक।

समय – मध्याह्न।

(घना वन है, पीछे की ओर वंशीवट दीख पड़ता है। इस वट के सिवा कदम्ब और तमाल के वृक्षों का बाहुल्य है। सघन छाया के कारण मध्याह्न में भी धूप यत्र–तत्र ही पत्रों से छनकर दिख पड़ती है। इसी वन के एक भाग में वल्लभाचार्य की छोटी–सी बैठक का कुछ भाग दिखायी पड़ता है। नेपथ्य से हरिसंकीर्तन की मधुर ध्वनि आती है। ध्वनि से जान पड़ता है कि यह हरिसंकीर्तन कुछ दूर पर हो रहा है। पर ध्वनि शनैः–शनैः बढ़ती जाती है। अतः ज्ञात होता है कि गायक गाते हुए निकट आ रहे हैं। दामोदरदास हरसानी, कृष्णदास मेघन और माधोभट्ट काश्मीरी का शीघ्रता से प्रवेश।)

दामोदरदास हरसानी – (बैठक के सन्निकट जा) महाप्रभु...महाप्रभु! श्रीकृष्णचैतन्य पधार रहे हैं।

(वल्लभाचार्य अत्यन्त शीघ्रता से बैठक के बाहर निकलते हैं। उनकी आतुरता का पता उनकी चाल और ऊपर के शरीर पर उत्तरीय की अस्त–व्यस्त स्थिति से लगता है।)

वल्लभाचार्य – कहाँ...कहाँ? दमला!

दामोदरदास हरसानी – आप निकट आती हुई हरिसंकीर्तन मधुर ध्वनि सुन रहे हैं न? यह श्रीकृष्णचैतन्य की ही ध्वनि है।

कृष्णदास मेघन – वे हरिसंकीर्तन करते और नृत्य करते हुए उसी प्रकार आ रहे हैं जैसा हम उनका वर्णन सुनते थे।

माधोभट्ट काश्मीरी – हम, महाप्रभु, अभी उनके दर्शन करके ही आपको पहले से सूचना देने आये हैं। जान पड़ता है आपके इस समय वृन्दावन निवास का वृत्त उन्हें ज्ञात हो गया है और वे आपसे मिलने ही पधार रहे हैं।

वल्लभाचार्य – यहाँ न भी पधार रहे होंगे तो चलो हम उन्हें लिया लायें, उनके दर्शन कर मैं अपना जीवन सफल करूँगा।

(वल्लभाचार्य का तीनों साथियों के साथ शीघ्रता से प्रस्थान। अब हरिसंकीर्तन की ध्वनि और निकट आ जाती है और वह स्पष्ट सुनायी देने लगती है।)

कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे।
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे।।
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण रक्ष माम्।
कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण पाहि माम्।।
राम राघव राम राघव राम राघव रक्ष माम्।
कृष्ण केशव कृष्ण केशव कृष्ण केशव पाहि माम्।।

(वल्लभाचार्य और चैतन्य महाप्रभु एक–दूसरे का आलिंगन किये हुए आते हैं। उनके पीछे दामोदरदास हरसानी, कृष्णदास मेघन, माधोभट्ट काश्मीरी तथा रूप, सनातन और जीव गोस्वामी चैतन्य के तीनों प्रधान शिष्य आते हैं। चैतन्य महाप्रभु अभी युवक हैं। वर्ण गौर, स्वरूप अत्यन्त सुन्दर, नीचे के अंग पर धोती और ऊपर के अंग पर हलका–सा उत्तरीय। उनके तीनों शिष्य भी युवक हैं, देखने में सुन्दर, वेश–भूषा चैतन्य के सदृश।)

चैतन्य – मैं...मैं आज कृतार्थ हुआ, महाप्रभु! आपके पावन दर्शन से।

वल्लभाचार्य – और मुझे...मुझे ऐसा लगता है, महाप्रभु! जैसे मेरा जीवन सफल हो गया हो! (कुछ रुककर) विराजिये, क्या बिछाऊँ आपके लिये!

(दामोदरदास हरसानी अपना उत्तरीय बिछाने लगते हैं।)

चैतन्य – नहीं, नहीं। इस वृन्दावन की रज से अधिक सुन्दर आसन और कौन हो सकता है, जिसमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द स्वयं लोटे हैं!

(चैतन्य महाप्रभु, वल्लभाचार्य और उनके सब साथी बैठ जाते हैं।)

वल्लभाचार्य – (दामोदरदास हरसानी, कृष्णदास मेघन और माधोभट्ट काश्मीरी को संकेत से बताते हुए) ये मेरे साथी दामोदरदास हरसानी, कृष्णदास मेघन और माधोभट्ट काश्मीरी हैं।

(तीनों चैतन्य को दण्डवत् करते हैं। चैतन्य खड़े हो तीनों को उठा–उठाकर हृदय से लगाते हैं।)

चैतन्य – (रूप, सनातन और जीव गोस्वामी को संकेत से बताते हुए) और ये महाप्रभु! मेरे साथ हैं – रूप, सनातन और जीव गोस्वामी।

(ये भी तीनों वल्लभाचार्य को दण्डवत् करते हैं और वल्लभाचार्य उठकर इनमें से हर एक को हृदय से लगाते हैं फिर सब बैठ जाते हैं।)

चैतन्य – बहुत काल हुआ जब कान पवित्र हुए थे आपकी विद्वत्ता और भक्ति के संवाद से। तभी से मन आकुल था आपके

पावन दर्शनार्थ! न जाने कितनी प्रतीक्षा के पश्चात् आज वह सुयोग आया!

वल्लभाचार्य – और मैं भी कब से सुन रहा था उस भक्ति की रसमयी स्रोतस्विनी का कलकल निनाद, जिससे आपने इस समस्त भूमण्डल को सराबोर कर दिया है। मेरा जीवन भी महाप्रभु! आपके इन पवित्र दर्शनों से आज पावन हुआ।

(कुछ देर निस्तब्धता)

वल्लभाचार्य – (उठते हुए) यद्यपि, हम सब भोजन से निवृत्त हो गये हैं; परन्तु आपको आज यहाँ कुछ–न–कुछ पाकर हमें कृतार्थ करना होगा। (बैठक में जाते हैं।)

चैतन्य – (अपने तीनों शिष्यों से) जिस भगवन्नाम को मैं समस्त वेद–वेदान्त, शास्त्र–पुराण से सर्वोच्च मानता हूँ, आज उसकी महिमा को मैं आचार्यवर से और अधिक समझूँगा।

दामोदरदास हरसानी – (हाथ जोड़कर) महाप्रभु आचार्य महाप्रभु भी भगवन्नाम को कम महत्त्व नहीं देते।

(वल्लभाचार्य का प्रवेश। वे चैतन्य के निकट बैठ जाते हैं।)

दामोदरदास हरसानी – (हाथ जोड़े हुए वल्लभाचार्य से) चैतन्य महांप्रभु भगवन्नाम को वेद, वेदान्त, शास्त्र–पुराण सबसे उच्च मानते हैं। उनकी इच्छा है भगवन्नाम की महिमा के सम्बन्ध में आपके वचनामृत सुनने की।

चैतन्य – हाँ, बड़ी इच्छा है, महाप्रभु।

वल्लभाचार्य – भगवन्नाम सर्वोपरि है। इसमें संदेह का स्थान ही नहीं।

चैतन्य – इसीलिये, आचार्यवर! मैं तो पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण जहाँ कहीं भी जाता हूँ, उसी की महिमा गाता हूँ और जो मिलता है उससे प्रार्थना करता हूँ, सवा लक्ष नाम नित्यप्रति जपने की।

वल्लभाचार्य – परन्तु, मैं तो इससे भी आगे बढ़ वैष्णवों से कहा करता हूँ कि तुम दिन और रात सोते और जागते सदा ही नाम का निरन्तर जप किया करो!

चैतन्य – सोते और जागते निरन्तर जप?

वल्लभाचार्य – हाँ, क्योंकि यदि हम एक पल भी नाम लेने से वंचित रह जायें तो बहिर्मुखता आ सकती है।

चैतन्य – परन्तु, अविराम भगवन्नाम का लेना कैसे सम्भव है; क्योंकि जीवधारी को अन्य लौकिक कार्य भी तो आवश्यक होते हैं।

वल्लभाचार्य – यह सर्वथा सम्भव है। जिस प्रकार कुम्हार अपने चाक को बार–बार नहीं घुमाता इतने पर भी एक बार घुमा देने पर वह चाक अपने–आप घूमता रहता है और कुम्हार अन्य कार्य भी कर सकता है, उसी प्रकार मन के अन्यथा होने पर सोते–जागते साँस के द्वारा वही जप अपने–आप चलता रहता है और जीवधारी अन्य कार्य कर सकता है।

चैतन्य – धन्य है, धन्य है! (अपने शिष्यों से) कितनी सुन्दर उक्ति है महाप्रभु की, भगवन्नाम के निरन्तर जप के सम्बन्ध में।

चैतन्य के तीनों शिष्य – (एक साथ) धन्य है, धन्य है!

वल्लभाचार्य – (कृष्णदास से) मेघन! कुछ अच्छे पल्लव तो ले आओ, महाप्रभु उसी पात्र में तो महाप्रसाद आरोगेंगे।

(कृष्णदास मेघन का प्रस्थान)

चैतन्य – और आचार्यवर! जितना महत्त्व भगवन्नाम का है, उतना ही भगवत्–रूप का भी?

वल्लभाचार्य – दोनों में से किसका अधिक महत्त्व है, यह कहना कठिन है।

चैतन्य – इसीलिये, मुझे जो भी मिलता है, उससे मैं कहा करता हूँ, आठों पहर और चौसठों घड़ी में कम–से–कम एक पल तो भगवान् के चरणारविन्दों में लगाया करो!

वल्लभाचार्य – इस सम्बन्ध में मेरा वही मत है जो नाम के सम्बन्ध में। एक क्षण के लिये भी उन चरणारविन्दों से चित्त के हटने पर जीवधारी कोई अधम कृत्य कर सकता है और जिस प्रकार भगवन्नाम के निरन्तर जप करते रहने पर भी जीवधारी के लिये अन्य कार्य करना सम्भव है, उसी प्रकार भगवत्–चरणारविन्दों में सदा–सर्वदा चित्त रखते हुए भी अन्य कार्य किये जा सकते हैं।

चैतन्य – धन्य है, आचार्यवर! धन्य है।

(कृष्णदास मेघन का कुछ पल्लव लिये हुए प्रवेश)

कृष्णदास मेघन – (वल्लभाचार्य से) महाप्रभो! मैं अभी–अभी एक बड़ा अद्भुत दृश्य देखकर आया हूँ।

वल्लभाचार्य – कैसा?

कृष्णदास मेघन – इन पल्लवों को मैं एक कुण्ड के तीर के वृक्ष से तोड़ रहा था। मैंने देखा कुण्ड के निकट एक भयानक जीव बैठा है।

वल्लभाचार्य – अच्छा!

कृष्णदास मेघन – उसें देखते ही भय के कारण जोर–जोर से मेरे मुख से भगवन्नाम निकलने लगा। मेरे मुख से भगवन्नाम निकलते ही उस प्राणी ने जलपान आरम्भ किया।

वल्लभाचार्य – फिर?

कृष्णदास मेघन – उसे जलपान करते देख ज्यों ही मेरा भय कम हुआ, मेरे मुँह से भगवन्नाम का उच्चारण रुका, त्यों ही उसने जलपान बंद कर दिया।

वल्लभाचार्य – तब?

कृष्णदास मेघन – फिर मेरे मुँह से भगवन्नाम निकलना आरम्भ हुआ और उसने पुनः जलपान करना आरम्भ किया। तीन बार ऐसा हुआ, महाप्रभो!

वल्लभाचार्य – और अन्त में क्या हुआ?

कृष्णदास मेघन – तीन बार के पश्चात् वह प्राणी धीरे–धीरे वहाँ से चला गया और तब मैं ये पल्लव लेकर यहाँ उपस्थित हो सका हूँ।

वल्लभाचार्य – (विचारते हुए) समझा! इस ब्रजभूमि में तो पशु–पक्षी–कृमि–कीटों में भी दैवी जीव होते हैं। वह कोई ऐसा दैवी जीव होगा, जो निरन्तर भगवन्नाम का जप करता होगा। यह जप करते–करते वह प्यासा हो गया होगा, परन्तु, इस भय से कि कहीं जल पीने से भगवन्नाम विस्मृत न हो जाय, वह जल न पी रहा होगा। जब तुम्हारे मुख से भगवन्नाम निकला और इसके कानों में वह नाम पड़ा, तब इस भय से कि भगवन्नाम विस्मृत न हो जाय, उसकी निवृत्ति हुई और उसने जल पिया, जितनी देर तक भगवन्नाम उसके कानों में पड़ता रहा वह जल पीता रहा, तीन बार ऐसा ही हुआ और जब उसकी तृष्णा बुझ गयी, तब वह भगवन्नाम का जप करते–करते चला गया।

सारे उपस्थित व्यक्ति – धन्य है, धन्य है।

(अक्काजी का प्रवेश। अक्काजी चैतन्य महाप्रभु को दण्डवत् कर वल्लभाचार्य की ओर देखती है।)

वल्लभाचार्य – (चैतन्य से) ये मेरी पत्नी है।

(चैतन्य यह सुनते ही अक्काजी को दण्डवत् करते हैं।)

चैतन्य – अहो भाग्य मेरे कि आपके भी दर्शन हुए।

वल्लभाचार्य – (मुस्कराकर) परन्तु, आपके लिये इनके स्थान पर जो हैं, उन्हें तो छोड़–छाड़कर आपने संन्यास ले लिया है।

चैतन्य – (मुस्कराते हुए) मैं समझता हूँ, दोनों प्रकार के व्यक्तियों की आवश्यकता है और इसीलिये मैंने नित्यानन्द को विवाह करने के लिये कहा है। जिसमें हम सबके अनन्तर इस रसमय भक्तिमार्ग के प्रचारार्थ योग्य उत्तराधिकारी होते रहें। (कुछ कहकर) और, महाप्रभो! मैंने सुना आपका भी विचार तो आजन्म विवाह न करने का ही था, इसी प्रकार के उत्तराधिकारियों के लिये पंढरीपुर में श्रीविट्ठलनाथजी की आज्ञा से आपने भी विवाह किया है।

वल्लभाचार्य – (मुस्कराते हुए) यह संवाद भी आपके पास पहुँच गया है।

चैतन्य – आपसे सम्बन्ध रखने वाली ऐसी कौन बात है, जो तीन–तीन पृथ्वी–परिक्रमाओं के पश्चात् भी सारा संसार न जानता हो।

(कुछ देर निस्तब्धता)

वल्लभाचार्य – (अक्काजी से) हाँ, तुम खड़ी कैसे हो, चैतन्य महाप्रभु के लिये कुछ सिद्ध नहीं है?

अक्काजी – प्रातःकाल का महाप्रसाद तो समाप्त हो गया था। मैंने कुछ अल्पाहार तो अभी सिद्ध कर लिया है, परन्तु...परन्तु। (चुप हो जाती हैं।)

वल्लभाचार्य – परन्तु, पर चुप क्यों हो गयी!

अक्काजी – एक असमंजस में पड़ गयी हूँ।

वल्लभाचार्य – कैसा असमंजस!

अक्काजी – सिद्ध की हुई सामग्री अन प्रसादी है। ठाकुरजी को समय के पूर्व उठाया नहीं जा सकता और अन प्रसादी वस्तु महाप्रभु को अर्पण किस प्रकार करूँ?

वल्लभाचार्य – (विचारते हुए) ऐसा...ऐसा ! परन्तु...परन्तु, तुम भ्रम में हो; चैतन्य महाप्रभु के हृदय में स्वयं भगवान् निवास करते हैं। उनके सम्मुख अन प्रसादी वस्तु भी रखी जायगी तो पहले भगवान् का भोग लग जायगा। अतः वह अन प्रसादी कैसे रह सकती है?

(चैतन्य खड़े होकर गद्‌गद् स्वर से निम्नलिखित श्लोक बोलते हैं।)

चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणं
श्रेयःकैरवचन्द्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनम्।
आनन्दाम्बुधिवर्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्तनम्।।

वल्लभाचार्य – धन्य है, धन्य है, आपके इस काव्य को।

(अब फिर से चैतन्य अपना वही हरिसंकीर्तन आरम्भ कर नृत्य करने लगते हैं। अक्काजी बैठक में जाती है, कृष्णदास मेघन पल्लव बिछाते हैं, अक्काजी भोज्य सामग्री बैठक में से ला उन पल्लवों पर परोसती हैं। चैतन्य के नृत्य के साथ धीरे–धीरे भावनाओं के उद्वेग से समस्त उपस्थित व्यक्ति वल्लभाचार्य सहित उनके संग नृत्य करने लगते हैं। नृत्य के बीच–बीच में हरि–हरि शब्द भी होता है। यह भावनाओं का उद्वेग इतना बढ़ता है कि कुछ देर बाद अक्काजी का परसना भी स्थगित–सा हो जाता है।)

(यवनिका)

(नाटक)

नाटक के मुख्यपात्र

(नाटक में प्रवेश के अनुसार)

1. गोसांई श्रीविट्ठलनाथजी – नाटक के नायक।
2. दामोदरदास हर्षानी – श्रीवल्लभाचार्य के प्रमुख शिष्य, जिन्हें देहावसान के समय श्रीवल्लभाचार्य अपने दोनों पुत्रों (श्रीगोपीनाथ और श्रीविट्ठलनाथ) को सौंप गये थे।
3. गिरिधर – श्रीविट्ठलनाथ के बड़े पुत्र।
4. कृष्णदास – श्रीनाथजी के मन्दिर के अधिकारी और अष्टछाप के गायक कवियों में से एक।
5. सम्राट् अकबर
6. राजा बीरबल
7. महारानी दुर्गावती
8. श्रीगोवर्धननाथजी का स्वरूप
9. सूरदास – व्रजभाषा के महाकवि (श्रीवल्लभाचार्यजी के शिष्य)।

कुछ नागरिक, संगीत–सम्मेलन के गायक और कवि आदि। गायकों में अष्टछाप के कवि और तानसेन हैं।

कवियों में रहीम, रसखान आदि हैं।

प्रमुख स्थान

गोकुल, जतीपुरा, चन्द्रसरोवर, फतहपुर सीकरी, गढ़ा (म.प्र.), मथुरा का विश्रामघाट, गोकुल का ठकुरानीघाट, जतीपुरा में गोवर्धन की कंदरा आदि।

उपक्रम

स्थान – गोकुल में विट्ठलनाथजी के छोटे–से, किन्तु पक्के और साफ–सुथरे घर का एक छोटा–सा कक्ष।

समय – उषःकाल।

(कक्ष की तीन ओर की दीवारें दिखती हैं। दीवारें स्वच्छ छुई से पुती हुई है। पीछे की दीवार में कोई दरवाजा या खिड़की नहीं है। दाहिनी ओर बाँयी दीवार के सिरों पर छोटे–छोटे दो दरवाजे हैं, जिनकी चौखट और चौखट के पल्ले सोलहवीं सदी की चौखटों और पल्लों के समान देहाती ढंग के काठ के हैं, जिनमें कोई कलात्मक वस्तु नहीं है, पर घी–तेल–पानी से स्वच्छ रखे गये हैं। कक्ष की छत पर कपड़ा तना हुआ है, जो छुई की पुताई से सफेद है। इस छत से उस काल की काँच की कुछ हँडियाँ और गोले लटक रहे हैं। कक्ष की भूमि गोबर से स्वच्छ लिपी हुई है। पीछे की दीवार से सटी हुई एक गद्दी बिछी है, जो सफेद चादर से ढकी हुई है। गद्दी पर पीछे की ओर दो गोल मसनद लगे हुए हैं। इन पर स्वच्छ–सफेद खोली चढ़ी हुई है। एक मसनद से टिके हुए विट्ठलनाथजी विराजे हुए हैं। दूसरी मसनद से टिके हुए दामोदरदास हर्षानी बैठे हुए हैं। विट्ठलनाथजी युवक हैं। रंग गोरा, शरीर ऊँचा, पूरा भरा हुआ, मुख अत्यन्त सुन्दर। वे नीचे के शरीर पर एक सफेद धोती पहने हुए हैं। ऊपर के शरीर पर एक सफेद ही उपरना (उत्तरीय) है। कोई आभूषण धारण नहीं कर रखा है। हर्षानीजी ढलती हुई वय के हैं। रंग उनका भी गोरा है और शरीर हृष्ट–पुष्ट। ढलती हुई अवस्था में भी वे सुन्दर दीख पड़ते हैं। वे भी धोती–उपरना ही पहने हुए हैं। दोनों के सिर के केश लम्बे हैं और पीछे की ओर शिखा सहित एक प्रकार का जूड़ा बँधा हुआ है।

दोनों की छोटी–छोटी मूँछें हैं। विट्ठलनाथजी के केश काले और हर्षानी जी के मिश्रित हैं। दोनों के ललाट पर वल्लभ– सम्प्रदाय का लाल रोली का तिलक और पीले चंदन के छापे हैं।)

विट्ठलनाथ – हर्षानीजी! पिताजी को लीला में पधारे वर्षों बीत गये। आज उनका जन्मोत्सव है और उनसे सम्बन्ध रखने वाली कितनी बातें एवं घटनाएँ मुझे स्मरण आ रही हैं।

हर्षानी – स्वाभाविक है, जय! जिस समय वे लीला में पधारे, उस समय आप तो केवल बारह वर्ष के अल्पवयस्क थे। आपको जब आज उनसे सम्बन्धित इतनी बातें और घटनाएँ स्मरण आ रही हैं, तब मुझे कितनी स्मरण आती होंगी, इसका आप अनुमान कर सकते हैं, क्योंकि मेरे जीवन का तो बहुत बड़ा भाग उन्हीं के चरणों में व्यतीत हुआ है और जिस समय वे लीला में पधारे, उस समय मैं आपके समान अल्पवयस्क नहीं था।

विट्ठलनाथ – फिर कितनी कृपा थी उनकी आप पर!

हर्षानी – हाँ, मेरे वैश्य होते हुए भी उन्होंने सबसे पहले ब्रह्म–सम्बन्ध मंत्र की दीक्षा मुझे दी।

विट्ठलनाथ – और कहा यहीं करते थे कि इस सम्प्रदाय को उन्होंने आपके लिये प्रकट किया है?

हर्षानी – मेरा नाम ही उन्होंने 'दमला' रख दिया था। कितने प्रेम से मधुर स्वर में वे मुझे पुकारते थे। उनकी वह ध्वनि आज भी मेरे कानों में गूँजती रहती है।

विट्ठलनाथ – और कितना भरोसा तथा विश्वास था उनका आप पर!

हर्षानी – इसमें भी कोई संदेह हो सकता है कृपानाथ? आपके अग्रज गोपीनाथजी को और आपको उन्होंने मेरे सुपुर्द कर दिया था।

विट्ठलनाथ – आपके वैश्य और वैष्णव होते हुए भी गुरु 'गादी' का भी आधा अधिकार आपको दे गये हैं! शिष्य होते हुए भी गुरु के साथ इस प्रकार आधी गादी पर बैठने का किसी को आज तक अधिकार नहीं है और न भविष्य में होगा।

(कुछ देर निस्तब्धता)

विट्ठलनाथ – इस युग में कितना कार्य किया है उन्होंने!

हर्षानी – इसी युग में क्यों, इस धर्मप्राण भारतीय संस्कृति का हजारों वर्षों का इतिहास देख लीजिये। किसने इतना कार्य किया है?

विट्ठलनाथ – हाँ, पचासी ग्रंथों का प्रणयन, जिसमें ब्रह्मसूत्रों पर अणुभाष्य के सदृश भाष्य और श्रीमद्भागवत पर सुबोधिनी के सदृश टीका। 'तत्त्वार्थदीप' नामक निबन्ध, 'पत्रावलम्बन' और षोडश ग्रंथों के सदृश विविध प्रकार के ग्रंथ।

हर्षानी – आपके पिताश्री तक 'प्रस्थानत्रयी' नाम से विख्यात उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और भगवद्गीता के इन तीन ग्रंथों पर भाष्य लिखने वाले आचार्य पद को प्राप्त करते थे। उन्होंने इन तीन के साथ श्रीमद्भागवत को और जोड़ा।

विट्ठलनाथ – हाँ, हमारे दर्शन को सांगोपांग करने के लिये यह आवश्यक था।

हर्षानी – और उनके ग्रंथों में जो अधूरापन है, उसे आप पूरा कर रहे हैं।

विट्ठलनाथ – हर्षानी जी! मैं साहित्य को सर्वोपरि वस्तु मानता हूँ। भारत का ही नहीं, संसार का आदि ग्रंथ 'ऋग्वेद' है। आज यदि ऋग्वेद और उसके पश्चात् का साहित्य उपलब्ध न होता तो यह धर्मप्राण भारतीय संस्कृति कितनी पुरानी है, इसका

पता ही न लग सकता था। इस साहित्य ने हजारों वर्षों से जन–समुदाय को प्रेरणा दी है, आज भी दे रहा है और भविष्य में न जाने कब तक देता रहेगा।

हर्षानी – फिर, उन्होंने केवल साहित्य का निर्माण किया हो, यह बात भी नहीं है। वे जितने बड़े विचारक थे, उतने ही कर्मठ भी।

विट्ठलनाथ – हाँ, उन्होंने तीन–तीन बार भारत की पाँव–प्यादे परिक्रमा की, जिसमें उन्होंने अपने सारे सिद्धान्तों को जन–समुदाय को समझाया और उससे जो प्रेरणा लोगों को प्राप्त हुई है, वह आज प्रत्यक्ष दिखायी देती है।

हर्षानी – इन परिक्रमाओं में उन्होंने जीवन के इकतीस वर्ष लगाये और उनमें श्रीमद्भागवत के कितने सप्ताह किये।

विट्ठलनाथ – हाँ, पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक समस्त देश में जहाँ–जहाँ ये भागवत–सप्ताह हुए, वहाँ–वहाँ उनकी बैठकों की स्थापना हुई, जिनकी संख्या चौरासी तक पहुँच गयी।

हर्षानी – फिर सर्वोपरि कोई एक विशिष्ट स्थान और विशिष्ट देव की भी आवश्यकता होती है, यह भी उन्होंने स्मरण रखा था।

विट्ठलनाथ – हाँ, वे कृष्णोपासक थे, अतः उन्होंने कृष्ण की प्रधान लीलाभूमि व्रज को स्थान के रूप में चुना और श्रीनाथजी को अपना प्रधान उपास्यदेव बनाया।

हर्षानी – श्रीनाथजी का प्राकट्य ही उनकी जन्मतिथि को गोवर्धन पर हुआ था। वही तिथि आज है।

(कुछ देर निस्तब्धता)

विट्ठलनाथ – हर्षानी जी! पिताश्री के समय की और उस समय के बहुत अधिक काल व्यतीत न होने पर भी आज की

परिस्थिति उससे भिन्न हो गयी है, ऐसा मुझे आभास होता है। सिकन्दर लोदी के शासनकाल तक मार–काट का युग था। पठानों का राज्य समाप्त होने पर और मुगलों का आधिपत्य जमने पर अकबर के इस शासनकाल में अल्पसमय में ही शासन व्यवस्थित हो गया है।

हर्षानी – हाँ, कृपानाथ! यह तो जीवन के सभी क्षेत्रों में दृष्टिगोचर होने लगा है।

विट्ठलनाथ – वह भी कितने थोड़े समय में! (कुछ रुककर) मुगल सम्राट् के वैभव ने जनसमुदाय को मुगल दरबार के प्रति जिस प्रकार आकर्षित किया है, वह स्पष्ट दिखायी देता है।

हर्षानी – सर्वथा।

विट्ठलनाथ – देखिये, हर्षानी जी! इस सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी मानव है। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' हमारे सम्प्रदाय का मूल सिद्धान्त रहा है। हम शुद्धाद्वैतब्रह्मवादी यथार्थ में अद्वैत को ही मानने वाले हैं। हमारा यह मत है कि ब्रह्म की इच्छा हुई लीला करने की, अथवा उसका यह स्वभाव ही है, एक से अनेक हो जाना। लीला तो इसके बिना चल ही नहीं सकती। अतः जो ब्रह्म एकाकी था, उसने अपने को अनन्त प्रकार की जड़–जंगम सृष्टि में परिणत कर दिया और 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' के अनुसार जो कुछ हमें दिखता है या हमारी दृष्टि के परे है, वह सब ब्रह्म ही है। यह मानते हुए भी इस समस्त सृष्टि में मनुष्य सर्वश्रेष्ठ है, इसे भी हम मानते हैं। मनुष्य की आत्मा जो ब्रह्म है, वह अन्नमय आदि पाँच कोशों से आच्छादित है। इन्हीं कोशों से उसे मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार – यह चतुर्विध मानसशक्ति प्राप्त हुई है और उस शक्ति द्वारा सब कुछ अच्छा–बुरा भोगने के लिये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ।

मानव–जीवन का सच्चा उद्देश्य तो भगवत्प्राप्ति ही है; परन्तु ज़ब तक इस भौतिक शरीर में उसकी स्थिति है, तब तक इन्द्रियों के द्वारा वह भौतिक सुखों को प्राप्त करने का अभिलाषी भी रहता है। मुगल दरबार ने सभी ज्ञानेन्द्रियों को तुष्ट करने के लिये नाना प्रकार के सुख–साधन उपस्थित किये हैं। सुख–लोलुप मन आत्मा के आध्यात्मिक आधार को भूलकर इन सुखों में फँसता जा रहा है।

हर्षानी – आपके विद्याभ्यास का आरम्भ आपके पिताश्री की देख–रेख में ही हुआ था; अतः मानव–मन का – विशेषकर इस समय के मानव–मन का आपने जो चित्र खींचा है, वह सर्वथा यथार्थ है।

विट्ठलनाथ – इसीलिये हर्षानी जी! मैं मानव मन को आध्यात्मिकता की ओर झुकाने के लिये श्रीनाथजी की सेवा में इस प्रकार का परिवर्तन करना चाहता हूँ, जिससे वह अपनी भौतिक वासनाओं को भी तुष्टि देकर भगवान् की ओर बढ़ सके।

हर्षानी – इसके लिये भी आपने कोई योजना सोची होगी?

विट्ठलनाथ – हाँ, हर्षानीजी! मैं बहुत समय से इस उधेड़बुन में लगा हुआ था। थोड़े दिन पहले ही मैंने इस योजना को अन्तिम रूप दिया है और आज वल्लभ–जयन्ती के दिन आपकी सम्मति के लिये उसे आपके सम्मुख उपस्थित करता हूँ।

हर्षानी – आपने इसके लिये बड़ा उपयुक्त दिवस चुना है।

विट्ठलनाथ – हर्षानीजी! शिश्नेन्द्रिय की मर्यादित तृप्ति और संतानोत्पत्ति के लिये, जिससे वंश–परम्परा चलती रहे, हमारी संस्कृति में विवाह की योजना है। आधुनिक काल में चरित्र की समुचित रक्षा के लिये पिताश्री ने संन्यास को वर्जित माना है।

हर्षानी – हाँ, स्वयं संन्यास ग्रहण करने के पश्चात् भी उन्होंने यही आज्ञा दी है कि हमारे सम्प्रदाय में अब कोई संन्यास ग्रहण न करे।

विट्ठलनाथ – इसके बाद उन इन्द्रियों का स्थान आता है, जो मन को सबसे अधिक प्रेरित करती हैं। ये चार हैं – चक्षु, श्रवण, घ्राण और रसना। मुगल दरबार ने सभी को आकर्षित करने के साधन प्रस्तुत किये हैं।

हर्षानी – सर्वथा।

विट्ठलनाथ – मैंने योजना बनायी है कि अब श्रीनाथजी का शृंगार केवल मयूरपिच्छ की चन्द्रिका और गुञ्जामाला का न होकर ऐसा वैभवशाली हो कि जन–समुदाय उनके दर्शन करने में अपने नेत्रों को तुष्ट कर सके और उसके नेत्र इन दर्शनों से अघा न पायें। इसीलिये श्रीनाथजी के मस्तक के मैंने आठ शृंगार सोचे हैं। मुकुट, सेहरा, टिपारा, कूल्हा, पाग, दुमाला, फेंटा और पगा। बादशाह सलामत तो पगड़ी पर एक सिरपेंच ही बाँधते हैं, श्रीनाथजी के आठ प्रकार के शृंगार होंगे। फिर बादशाह सलामत के कंठे तो अधिक–से–अधिक छाती तक कुछ हार, कण्ठे आदि रहते हैं, श्रीनाथजी को तो कण्ठ से लेकर चरणपर्यन्त सारे अंग–प्रत्यंगों में विविध प्रकार के आभूषण धारण कराये जायेंगे। इसी के साथ नाना प्रकार के ऐसे कलात्मक प्रदर्शन होंगे कि जिनके दर्शन से लोग अपनी सुध–बुध भूल जायेंगे। हमारी संस्कृति के सम्बन्ध में एक कहावत प्रचलित है – 'आठ वार और नौ त्यौहार'। अतः श्रीनाथजी के मंदिर में उत्सवों की धूम रहेगी और इन उत्सवों के अतिरिक्त अगणित मनोरथ होंगे, जिनके दर्शन कर जनसमुदाय दंग रह जायगा।

हर्षानी – (मुस्कराते हुए) बड़ी अच्छी सूझ है।

विट्ठलनाथ – नेत्रों को दर्शनों से कृतार्थ कर जन–समुदाय अपने कानों को भरेगा मधुर कीर्तन की ध्वनि से। इसके लिये मैंने पिताश्री के समय के चार – कुम्भनदास, सूरदास, परमानन्ददास और कृष्णदास और अपने समय के चार – गोविन्दस्वामी, छीतस्वामी, नन्ददास और चतुर्भुजदास – इस प्रकार आठ गायक कवियों की 'अष्टछाप' नामक एक मण्डली बनाने का निश्चय किया है।

हर्षानी – यह भी अनुपम सूझ है।

विट्ठलनाथ – हर्षानीजी! इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इन आठों में काव्य रचने और अपने काव्य को स्वयं गाने की एक अद्‌भुत शक्ति है। इसे सोने में सुगन्ध कह सकते हैं। यह क्वचित् ही होता है कि कोई कवि गायक भी हो। फिर कहीं एकाध व्यक्ति ऐसा मिल सकता है, पर आठ–आठ व्यक्ति नहीं। इस अष्टछाप के काव्य की जब स्वरलहरी गूँजेगी, तब मुगल दरबार का सारा संगीत फीका पड़ जायगा।

हर्षानी – एकदम फीका।

विट्ठलनाथ – और घ्राणेन्द्रिय को तुष्ट करने के लिये नाना प्रकार के इत्रों की तथा गुलाबजल और केवड़ा–जल के सिंचन से सुगन्ध की लहरें उठेंगी। इत्र आदि का प्रयोग तो मुगल–दरबार में भी होता है, पर हमारे यहाँ एक विशेष बात और होगी।

हर्षानी – वह कौन–सी ?

विट्ठलनाथ – मुगल–दरबार के दस्तरखान पर जो खाना आता है, उसमें प्याज और लहसुन की दुर्गन्ध रहती है। श्रीनाथजी

के प्रसाद में इस दुर्गन्ध के स्थान पर होगी केसर, कस्तूरी, अगर, बरास आदि की सुगन्ध।

हर्षानी – ठीक!

विट्ठलनाथ – और रसना को तुष्ट करने के लिये श्रीनाथजी के भोग की ऐसी सामग्री निर्मित होगी, जिसकी अब तक किसी ने कल्पना भी नहीं की है। इस प्रकार श्रीनाथजी का शृंगार, उनके सम्मुख होने वाले कीर्तन का राग और खाद्य–सामग्री का भोग जनसमुदाय की इन्द्रियों को तुष्ट करते हुए उन्हें केवल भौतिकवादी ही नहीं रखेगा। यह सारा आयोजन यथार्थ में भगवान् की सेवा के लिये है; क्योंकि इस जड–जंगम समस्त सृष्टि के रूप में वे ही हैं और वे हैं उत्तम–से–उत्तम वस्तुओं के भोक्ता, यह भावना जन–समुदाय को केवल भौतिकवादी ही न रहने देकर उसे भगवत्परायण बना देगी। श्रीनाथजी के जैसे वैभव की मैंने कल्पना की है, वह अद्वितीय होगा, हर्षानीजी! अद्वितीय।

हर्षानी – आपकी इस सारी योजना से मैं सर्वथा सहमत हूँ, परन्तु इसके साथ एक वस्तु और जोड़ना चाहता हूँ।

विट्ठलनाथ – कौन–सी?

हर्षानी – (विट्ठलनाथजी के धोती और उपरने की ओर संकेत करते हुए) इस धोती और उपरने के स्थान पर आपका वेष भी अब राजसी होगा।

विट्ठलनाथ – नहीं, नहीं, हर्षानीजी! पिताश्री ने जीवनभर मोटी धोती और बिना सिलाये वस्त्र धारणकर बिना पदत्राण के नंगे पैरों इकतीस वर्ष तक भारत–भ्रमण किया। मैंने भी अब तक कोई ऐसा वस्त्र नहीं पहना है, जो सिया गया हो एवं न कोई आभूषण धारण किये हैं। मैं भी इसी वेष में अपना जीवन व्यतीत करना चाहता हूँ।

हर्षानी – परन्तु कृपानाथ! आपके पिताश्री के समय श्रीनाथजी ने भी मोरचन्द्रिका और गुंजमाल ही धारण की थी। आप स्वयं कहते हैं कि परिस्थिति के परिवर्तन के कारण श्रीनाथजी की सेवा में परिवर्तन आवश्यक है। वही बात आपके वेष के सम्बन्ध में भी है। आपके अग्रज गोपीनाथजी तिलकायत हैं। वे चाहें तो अपना वेष वैसा ही रख सकते हैं।

विट्ठलनाथ – परन्तु वे तो प्रायः जगदीशपुरी में रहते हैं। उनका आकर्षण प्रधान रूप से श्रीजगन्नाथजी का स्वरूप है। उनके तिलकायत रहते हुए भी श्रीनाथजी के तिलकायत का तो अधिकतर सारा कार्य मुझे ही करना पड़ता है।

हर्षानी – जो कुछ हो, आपकी योजना को सफल करने के लिये आपके वेष में भी परिवर्तन आवश्यक है। भगवान् ने आपको अद्‌भुत सौन्दर्य प्रदान किया है। इस वेष से वह निखरेगा और आप आकर्षण के जीवित् केन्द्र हो जायेंगे।

(नेपथ्य से गाने की एक ध्वनि आरम्भ होती है। विट्ठलनाथजी और हर्षानीजी इस पद को तन्मय हो सुनते हैं।)

पद

प्रात समै श्रीवल्लभसुत कौ उठतहिं रसना लीजिये नाम।
आनँदकारी (प्रभु) मंगलकारी, असुभ–हरन जन पूरनकाम।।
याहि लोक, परलोक के बंधू, को कहि सकै तिहारे गुनग्राम।
'नंददास' प्रभु रसिक सिरोमनि राज करौ (श्री) गोकुल सुख–धाम।।

(यवनिका)

पहला अंक

पहला दृश्य

स्थान – जतीपुरा में पूरनमल खत्री द्वारा बनाये हुए श्रीनाथजी के मन्दिर का वह भाग, जिसमें मणिकोठे में श्रीनाथजी विराजे हुए हैं। सामने नवनीतप्रियजी गादी पर विराजमान हैं।

समय – मध्याह्न।

(मणिकोठे के तीन ओर की स्वच्छ सफेद दीवारें दिखती हैं। दाहिनी और बाँयीं ओर की दीवारों में वैसी ही चौखटों और पल्लों के छोटे–छोटे दरवाजे हैं, जैसे गोकुल में विट्ठलनाथजी के घर के कक्ष के थे। पीछे की दीवार के कुछ आगे श्रीनाथजी का अचल विशाल स्वरूप प्रतिष्ठित है। स्वरूप के ऊपर और दोनों ओर ऐसी पिछवाई लगी हैं, जिसमें विविध प्रकार के पुष्प चित्रित हैं। पिछवाई के ऊपरी भाग से सटा हुआ इसी प्रकार का चँदोवा तना है। आज श्रीनाथजी का फूल–मण्डली का मनोरथ है। श्रीनाथजी एक फूल के बँगले में विराजमान हैं। यह बँगला बेले की कलियों का बनाया हुआ है। बँगले के स्तम्भों पर खड़ी कलियाँ बँधी हुई हैं। ऐसे छः स्तम्भ हैं। आगे एक–एक और दो–दो स्तम्भ और पीछे एक–एक और एक–एक स्तम्भ। आगे के दो–दो स्तम्भों के बीच में कलियों की सुन्दर जाली बनायी गयी है। इन स्तम्भों पर बँगले की छत है। सारी छत कलियों की जाली से आच्छादित है। बँगले की कलात्मक कलियों का काम देखते ही बन पड़ता है। श्रीनाथजी का आज फूलों का श्रृंगार है। मल्लकाछ गले से चरणों तक कलियों का सुन्दर पुष्पहार और मस्तक पर फूलों का टिपारा तथा कानों में फूलों के कुण्डल! दो–दो छोरों के दो पुष्पों के बने हुए दुपट्टे हैं। भुजाओं के बीच–बीच भुजबन्ध, हाथों के वलय और

चरणों के नूपुर भी फूलों के हैं। अद्भुत दर्शनीय श्रृंगार है। नवनीतप्रिय जी का श्रृंगार भी फूलों का है। सामने एक जल का कुण्ड है, जिसमें विविध रंग के फुहारे छूट रहे हैं। इस कुण्ड के सम्मुख कीर्तनिया गा रहे हैं और पद के साथ विविध प्रकार के वाद्य बज रहे हैं।)

पद

बैठे फूल–महल में दोऊ राधा और गिरधारी।
फूलन हार, सिंगार फूलन के, फूल टिपारो धारी।।
फूलन सेज, गेंदुआ, तकिया, फूलन की पिछवारी।
फूले गावत वेनु वजावत, राग रंग भयौ भारी।।
फूले मधुप–कोकिला कूजत, बहत पवन सुखकारी।
श्रीविट्ठल गिरधरन लाल पर तन–मन–धन सब भारी।।

(पद समाप्त होते–होते विट्ठलनाथजी पधारकर आरती करते हैं। आज भी विट्ठलनाथजी श्वेत उपरना और धोती ही पहने हैं, परन्तु गले में मोती की कंठी और हाथों में सोने के कड़े हैं। स्त्री–पुरुषों की भारी भीड़ है। आरती के बाद 'श्री गिरिराजधरन की जय' का बार–बार जय–जयकार होता है।)

(लघु यवनिका)

दूसरा दृश्य

स्थान – वही।

समय – मध्याह्न।

(आज नाव का मनोरथ है। श्रीनाथजी का मुकुट–काछनी का श्रृंगार है। काछनी तीन रंग की है, जो बड़े पतले वस्त्र की बनायी हुई है। सारा श्रृंगार मोती का है – मोती का मुकुट, कानों में

मोती के झुमके, मोती के हार, मोती के भुजबंध, वलय और नूपुर। पिछवाई में यमुनाजी का दृश्य है। चँदोवा में बादलों से आच्छन्न हुआ आकाश चित्रित है। सामने एक लम्बे जल के कुण्डल में छोटी–सी सुन्दरता से रंगी हुई मोरपंखी नाव है। इस नाव में कमल के पुष्पों का बँगला है, जिसमें श्रीनवनीतप्रियजी गादी पर विराजमान हैं। नवनीतप्रियजी का शृंगार भी मोती का है। कुण्ड के सामने कीर्तनिया गा रहे हैं। अनेक वाद्य–वादक विविध प्रकार के वाद्य बजा रहे हैं।)

पद

स्याम जमुना बीच खेवत नाव।

एक सखी आई घर सै कहै, मोहू कौ बैठाव।।1।।

बैठौ कैसै, घाट औघट है, रपत परत है पाँव।

हाथ पकरि बैठाय आप ढिंग, रसिकन रच्यौ उपाव।।2।।

(पद पूरा होते–होते विट्ठलनाथजी आकर आरती करते हैं। उनकी वेश–भूषा पहले के दृश्य के सदृश ही है। स्त्री–पुरुषों की अपार भीड़ है, जो पहले दृश्य के सदृश ही 'गिरिराजधरन की जय' बारम्बार बोलती है।)

(लघु यवनिका)

तीसरा दृश्य

स्थान – वही।

समय – संध्या।

(आज झूले का मनोरथ है। श्रीनाथजी का सेवरे का शृंगार है। रेशमी चाक का पीला धागा है और विविध रंग के रत्नों से जड़ा हुआ सेवरा, हार, भुजबन्ध, वलय और नूपुर। पिछवाई पीली रेशमी है, जिसमें रुपहली गोटे का काम है। इसी प्रकार का चँदोवा है।

श्रीनाथजी के दाहिनी ओर दाहिनी दीवार से कुछ आगे हिंडोरा है, जो पीले कदम्ब के पुष्पों से बनाया गया है। हिंडोरे में गादी पर श्रीनवनीतप्रियजी विराजमान हैं। वे भी पीतवस्त्र ही धारण किये हुए हैं और उनका श्रृंगार भी विविध प्रकार के रत्नों से जड़ा हुआ है। सामने कीर्तनिया गा रहे हैं। इनके साथ विविध प्रकार के वाद्य बज रहे हैं।)

पद

प्यारी कौ हिंडोरना हो, रोप्यौ कदम की डारी।।
रेशम डोर, पवन पुरवाई, झूलत स्याम बिहारी।।
चहुँदिस सखी झुलावत ठाढ़ी, तन–मन–धन बलिहारी।।1।।
राधे जू झूलत, स्याम झुलावै, गावत गीत सुहाई।
मधुर–मधुर घन गरजत जैसे मधुरि–सी मुरलि बजाई।।2।।
वृंदावन की सोभा निरखत, गावत सावन–गीत।
श्रीविट्ठल प्रभु की छबि निरखत दोउन की रस रीत।।3।।

(पद समाप्त होते–होते विट्ठलनाथजी आकर आरती करते हैं। आज वे पीली रेशमी बगलबंदी पहने हुए हैं और पीला जरी का दुपट्टा लिये हैं। वे भी जड़ाऊ आभूषणों से भूषित हैं। अपार दर्शनार्थी स्त्री–पुरुषों की भीड़ है, जो बार–बार 'गिरिराजधरन की जय' बोलती है।)

(लघु यवनिका)

चौथा दृश्य

स्थान – वही।

समय – संध्या।

(आज साँझी का मनोरथ है। श्रीनाथजी का दुमाले का शृंगार है। सलमे–सितारे के कामवाला रेशमी पचरँगी घेरदार बागा। वैसा ही दुपट्टा और पचरंगी जड़ाऊ आभूषण। पिछवाई और चँदोवा भी पचरंगी है। सामने विविध रंग की इन्द्रधनुषी बड़ी ही कलात्मक साँझी बनायी गयी है। साँझी में वृन्दावन चित्रित है, जिसके एक ओर यमुना बह रही है और दूसरी ओर गोवर्धन पर्वत के शिखर दृष्टिगोचर हो रहे हैं। यमुना के तट पर गोपी–ग्वालों से घिरे हुए भगवान् श्रीकृष्ण चित्रित हैं, जो मुरली बजा रहे हैं। सारा दृश्य दर्शनार्थी एकटक दृष्टि से निहार रहे हैं। उनकी चितवन से जान पड़ता है कि उनका मन इन दर्शनों से अघा नहीं रहा है। सामने निम्नलिखित कीर्तन हो रहा है और पद के साथ विविध वाद्य–यंत्रों का वादन हो रहा है।)

पद

पूजन चली साँझिकि सुम धुरि, सुभ दिन, सुभ महुरत रात।।
चंचल चपल चपला–सी डोलत, चंपे–जैसे गात।।1।।
अपने–अपने मँदिर ते निकसीं, दीप लिएँ सब हाथ।।
घोघी के प्रभु तुम बहु नायक, सब सखियन के साथ।।2।।

(पिछले दृश्यों के सदृश इस दृश्य में भी पद समाप्त होते–होते पचरंगी रेशमी सलमे–सितारे के काम वाली बगलबंदी पहने, वैसा ही दुपट्टा लिये, जड़ाऊ विविध आभूषणों में विभूषित विट्ठलनाथजी आरती करते हैं। गिरिराजधरन का जय–जयकार होता है।)

(लघु यवनिका)

पाँचवाँ दृश्य

स्थान – वही।

समय – रात्रि।

(आज अन्नकूट है। हीरों से जड़ा हुआ भारी शृंगार है। मस्तक पर हीरे का कुलहा है, जिसके पीछे श्वेत जरी के गोकर्ण धारण कर रखे हैं। गोकर्णों के पीछे मोरचन्द्रिका है। कानों में हीरे के कुण्डल हैं। कण्ठ से लेकर चरणों तक हीरों के हार, भुजाओं पर हीरों के भुजबन्ध और हाथों में हीरे के वलय तथा चरणों में हीरे के नूपुर हैं। वस्त्र सफेद जरी के हैं। चाक का बागा और जिसके छोरों पर मोती की झालर है, ऐसा श्वेत जरी का दुपट्टा है। पिछवाई और चँदोवा भी श्वेत जरी के हैं। श्रीनाथजी के सामने आज मथुरेशजी, विट्ठलनाथजी, द्वारकाधीशजी, गोकुलनाथजी, गोकुलचन्द्रमाजी, बालकृष्णजी और मदनमोहनजी के सात स्वरूप विराजमान हैं। एक ओर गादी पर नवनीतप्रियजी हैं और दूसरी ओर गादी पर मुकुन्दरायजी। सबका शृंगार श्रीनाथजी के सदृश ही है। (आज सामने विविध प्रकार की भोज्य–सामग्री दृष्टिगोचर होती है, कीर्तनकार नहीं दिखते। नेपथ्य में कीर्तन हो रहा है, जिसके साथ नेपथ्य में ही विविध प्रकार के वाद्य बज रहे हैं।)

पद

गाम–गाम ते ग्वालिन आई।।
अति आनंद चलीं घर–घर तें, गोवर्धन–पूजा कौ धाई।।1।।
खीर–हाँडि, दधि, पुआ, सुहारी पूजन कौं सब लाई।।
गावत गीत सबै गोधन के, अति ही लगत सुहाई।।2।।
जसुमति–सुत व्रजराज–लाडिले फिरि–फिरि निरखि सराई।
श्रीविट्ठल गिरधरन लाल पर व्रज–सुंदरि मुसकाई।।3।।

(पद समाप्त होते–होते घंटे और झलर की ध्वनि सुनायी देती है, जिससे जान पड़ता है कि दूर में आरती हो रही है। आज आरती करते हुए विट्ठलनाथजी के दर्शन नहीं होते। दर्शनार्थी भी

नहीं दीख पड़ते। गिरिराजधरन की जय–जयकार के शब्दों से जान पड़ता है कि दूर पर अपार दर्शनार्थियों की भीड़ है।)

(यवनिका)

दूसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान – जतीपुरा का एक मार्ग।

समय – अपराह्न।

(देहाती मार्ग है। मार्ग के दोनों ओर कुछ देहाती मकान बने हुए हैं। मार्ग में कुछ नागरिक खड़े हैं। वेश–भूषा व्रज के ग्रामीणों के सदृश हैं, परन्तु सबके ललाट पर वल्लभ–सम्प्रदाय का लाल कुंकुम का तिलक है, जिसके बीच में पीले गोपीचन्दन के छापे हैं।)

एक – तिलकायत श्रीगोपीनाथजी जगदीशपुरी में ही लीला में पधारे।

दूसरा – वय भी उनकी कुछ अधिक नहीं थी।

तीसरा – हाँ, अल्पवयस्क ही थे, परन्तु अवस्था तो लीला में पधारते समय श्रीमहाप्रभुजी की भी कम ही थी।

चौथा – उन्हें तो भगवदाज्ञा प्राप्त हुई थी कि उनका कार्य समाप्त हो गया और अब वे पुनः लीला में पधार आयें।

पाँचवाँ – वे स्वयं ही अवतार थे।

पहला – सम्भव है, इसी प्रकार की लीला में पधारने की भगवदाज्ञा गोपीनाथजी को प्राप्त हुई हो।

दूसरा – परन्तु गोपीनाथजी को श्रीनाथजी को तो ऐसी आज्ञा प्राप्त हो नहीं सकती; क्योंकि श्रीनाथजी के तिलकायत रहते हुए भी उनके इष्ट तो जगन्नाथजी ही थे।

तीसरा – क्या कहते हो? श्रीनाथजी और जगन्नाथजी में कोई भेद है क्या? दोनों ही भगवान् श्रीकृष्ण के स्वरूप हैं।

चौथा – जो कुछ भी हो। अब प्रश्न है श्रीनाथजी के तिलकायत का।

पाँचवाँ – यह प्रश्न उठना तो नहीं चाहिये, क्योंकि गोपीनाथजी के रहते हुए भी तिलकायत का सारा कार्य विट्ठलनाथजी ही करते थे।

चौथा – हाँ, बात तो ऐसी ही थी। यह विवाद नहीं उठना चाहिये था। विट्ठलनाथजी ने अपनी विविध प्रकार की सेवा से श्रीनाथजी को जनसमुदाय के लिये कितना आकर्षक बना दिया है। श्रीनाथजी का शृंगार, राग और भोग अद्वितीय है। मुगल–दरबार भी श्रीनाथजी के सामने फीका पड़ गया है। इतने पर भी विवाद तो उठ ही गया।

पहला – यह विवाद कुछ स्वार्थियों ने उठाया है।

दूसरा – ये स्वार्थी अपने स्वार्थ–साधन के लिये गोपीनाथजी के दूधमुँहे बच्चे को तिलकायत बनाना चाहते हैं।

तीसरा – पर कहाँ विट्ठलनाथजी और कहाँ गोपीनाथजी के लालजी पुरुषोत्तम!

पहला – पर स्वार्थी यह कहाँ देखते हैं। उनका उल्लू तो तभी सीधा हो सकता है, जब सत्ता इस दूधमुँहे बच्चे के हाथ में आये।

चौथा – और विट्ठलनाथजी इस सारे प्रसंग में एकदम तटस्थ हैं।

पहला – हाँ, वे तो कहते हैं कि उनका कार्य श्रीनाथजी की सेवा है। गोपीनाथजी के तिलकायत रहते हुए भी वे यह सेवा करते थे और अब भी वे ही करेंगे, तिलकायत चाहे कोई भी क्यों न हो।

पाँचवाँ – सारे प्रसंग में सबसे अधिक दुःख की बात तो यह है कि अधिकारी कृष्णदास इस विवाद में गोपीनाथजी की बहूजी के साथ हो गये हैं, जो अपने पुत्र को तिलकायत बनाना चाहती हैं।

(एक और नागरिक का शीघ्रता से प्रवेश)

आगन्तुक – अरे, आप लोगों ने सुना, अधिकारी कृष्णदास ने विट्ठलनाथजी के लिये श्रीनाथजी की ढ्योढ़ी बंद कर दी।

पहले से उपस्थित पाँचों नागरिक – (एक साथ) क्या... क्या... कह रहे हो?

आगन्तुक – मैं बिल्कुल ठीक कह रहा हूँ। अब विट्ठलनाथजी श्रीनाथजी के दर्शन नहीं कर सकेंगे। यद्यपि उन्होंने अब गोकुल को अपना स्थायी निवास बनाकर उसे बसाया है, तथापि वे गोकुल में भी नहीं रहेंगे। वे परासोली गाँव के चन्द्र–सरोवर पर जा रहे हैं और श्रीनाथजी के दर्शन के बिना उन्होंने अन्न का त्याग कर दिया है। जब तक उन्हें श्रीनाथजी के दर्शन नहीं मिलेंगें, तब तक वे केवल दूध पीकर अपना शरीर चलायेंगे।

पाँचवाँ – हम कृष्णदास के इस अत्याचार को कभी सहन नहीं कर सकते।

पहले से आये हुए शेष चार नागरिक – (एक साथ) कभी नहीं...कभी नहीं।

आगन्तुक – अच्छा, अभी तो हम चलें; जहाँ विट्ठलनाथजी निवास करेंगे।

आगन्तुक को छोड़ सब नागरिक – (एक साथ) हाँ, सब वहीं चलें, जहाँ विट्ठलनाथजी हैं।

(लघु यवनिका)

दूसरा दृश्य

स्थान – गोकुल में विट्ठलनाथजी के घर का एक कक्ष।

समय – अपराह्न।

(यह कक्ष वैसा ही है, जैसा उपक्रम में विट्ठलनाथजी का कक्ष था। अपने कुछ साथियों के साथ गिरिधरजी बैठे हुए हैं। गिरिधरजी तरुणाई में प्रवेश कर रहे हैं। गौरवर्ण के सुन्दर व्यक्ति हैं। ऊपर के शरीर पर सफेद बगलबंदी धारण किये हुए हैं और नीचे के शरीर पर श्वेत धोती। सिर के केस लम्बे हैं और चौड़ी शिखा पीछे की ओर बँधी हुई है। उनके गले में कंठी और हाथों में वलय भी हैं। आभूषण स्वर्ण के हैं। उनके ललाट पर वल्लभ–सम्प्रदाय का लाल रोली का तिलक लगा हुआ है, जिसके बीच में पीले गोपीचन्दन के छापे हैं। उनके साथी भी सभी तरुण हैं और सबकी वेशभूषा गिरिधरजी के सदृश ही हैं। सबके ललाट तिलक और छापों से विभूषित हैं।)

गिरिधर – पिताश्री को अन्न छोड़े छः मास बीत गये। श्रीनाथजी के वियोग में जिस प्रकार की व्यथित मनोदशा में वे रहते हैं, वह सहनीय नहीं है।

एक नागरिक – सर्वथा असहनीय है।

बहुत–से नागरिक – (एक साथ) सर्वथा, सर्वथा।

गिरिधर – उनकी मनःस्थिति का पता उन विज्ञप्तियों से लगता है, जिन्हें निर्मित कर और लिख–लिखकर वे श्रीनाथजी की सेवा में नित्य ही भेजते हैं।

एक नागरिक – उनका मन तो विरह से भरा हुआ है, इसमें संदेह नहीं और इसी कारण इन विज्ञप्तियों की इस प्रकार की रचना हो रही है। परन्तु उनके इस मानसिक कष्ट के कारण

ऐसे साहित्य की रचना हो रही है, जो करुण रस की दृष्टि से स्थायी साहित्य होगा।

दूसरा नागरिक – महाकवि भवभूति ने तो साहित्य के नवरस न मानकर यथार्थ में एक करुण रस को ही सच्चा रस माना है।

कुछ नागरिक – (एक साथ) यह सत्य, सत्य है।

गिरिधर – परन्तु वैष्णवों! पुत्र के नाते मेरे लिये तो पिताश्री की ऐसी मानसिक अवस्था का सहन कर सकना असम्भव है।

एक नागरिक – आप तो उनके पुत्र हैं, अतः आपके लिये उनकी यह मानसिक स्थिति सहन करना सम्भव नहीं; पर इने–गिने लोगों को छोड़कर सारे व्रजवासी उनकी इस मनोदशा से कितने पीड़ित हैं, इसका वर्णन नहीं हो सकता।

कुछ नागरिक – (एक साथ) हाँ, वह वर्णनातीत है, कृपानाथ, वर्णनातीत।

एक नागरिक – पर इस स्थिति के अन्त करने का क्या उपाय है, यह किसी की समझ में नहीं आता।

गिरिधर – मैंने बहुत सोचने–विचारने के पश्चात् इसका उपाय खोजा और उस उपाय के अनुसार व्यवस्था भी कर ली।

कुछ नागरिक – (एक साथ) क्या व्यवस्था की, क्या व्यवस्था की?

एक नागरिक – क्या हम लोग उसे सुनने के अधिकारी नहीं हैं?

गिरिधर – आप ही नहीं, सारा देश उसे सुनेगा और सुनकर इतना प्रसन्न होगा कि जिसकी आप कोई भी कल्पना तक नहीं कर सकते।

कुछ नागरिक – (एक साथ) कहिये, जल्दी कहिये उसे।

गिरिधर – वैष्णवों! जब छः महीने की उधेड़–बुन के पश्चात् भी मुझे शासन की सहायता लेने के सिवा और कोई मार्ग नहीं दिखायी दिया, तब मैंने इस सम्बन्ध में शासन की सहायता ली है।

कुछ नागरिक – (एक साथ) बिल्कुल ठीक किया आपने, बिल्कुल ठीक।

कुछ नागरिक – (एक साथ) सर्वथा, सर्वथा।

गिरिधर – शासन की सहायता लेकर मैंने क्या किया, इसे सुनकर आप सब प्रसन्न हो जायेंगे।

कुछ नागरिक – जल्दी–जल्दी बता दीजिये हमें।

एक नागरिक – हाँ, हमारा कलेजा मुँह को आ रहा है।

गिरिधर – उस दुष्ट कृष्णदास को अब तक बंदी बना लिया गया होगा।

कुछ नागरिक – (एक साथ; जोर से) बहुत अच्छा, बहुत अच्छा।

गिरिधर – (बगलबंदी के खीसे से एक कागज निकालकर) और यह शाही फरमान है, जिसके अनुसार पिताश्री श्रीनाथजी के मंदिर में प्रवेश कर सकेंगे।

कुछ नागरिक – (एक साथ) धन्य है, धन्य है आपको।

एक नागरिक – पुत्र हो तो ऐसा हो।

गिरिधर – चलिये, अब हम सब चन्द्रसरोवर पर चलकर पिताजी को जतीपुरा में श्रीनाथजी के मन्दिर को ले चलें।

सब नागरिक – (एक साथ) अवश्य, अवश्य। गिरिराजधरन की जय! (गिरिधरजी कक्ष से बाहर निकलते है। सब लोग जय–जयकार करते हुए उनके पीछे–पीछे जाते हैं।)

(लघु यवनिका)

तीसरा दृश्य

स्थान – चन्द्रसरोवर।

समय – अपराह्न।

(स्वच्छ जल से भरे हुए सुन्दर कुण्ड का एक भाग दिखायी देता है। कुण्ड के चारों ओर घना वन है। कुण्ड के एक घाट पर अत्यन्त निकट एक छोटा–सा घर है। उसकी दालान में अकेले विट्ठलनाथजी एक गादी पर बैठे हुए हैं। वे श्वेत धोती और उपरना धारण किये हुए हैं। वस्त्र स्वच्छ न होकर मैले हो गये हैं। शरीर पर कोई आभूषण नहीं है। क्षौर न होने के कारण मूँछें और दाढ़ी के बाल बहुत बढ़ गये हैं, जिनसे उनका सुन्दर मुख–मण्डल आच्छादित–सा हो गया है। सिर के बाल भी बढ़े हुए हैं। बालों में तेल–फुलेल आदि नहीं है ओर सिर तथा दाढ़ी–मूँछों के बाल बिखरे हुए–से हैं। विट्ठलनाथजी के सामने एक काष्ठ के छोटे–से सिंहासन पर, जिस पर गद्दी–तकिये लगे हैं, श्रीनाथजी का चित्र रखा हुआ है। विट्ठलनाथजी हाथ जोड़े हुए कह रहे हैं। आँखों में आँसू भरे हुए हैं।)

विट्ठलनाथ – छः महीने, छः महीने हो गये आपके दर्शन मिले। कौन–कौनसे मेरे ऐसे पापों का उदय हुआ है, जिससे आपके दर्शनों से वंचित रहकर जीवन व्यतीत कर रहा हूँ। ऐसे जीवन से तो मृत्यु कहीं भली है। इस जन्म में तो कोई पाप स्मरण नहीं आते, जो बन पड़े हों; परन्तु न जाने कितने जन्मों के कर्म फल देते हैं। (कुछ रुककर) क्या पिताश्री के समय की आपकी सेवा–पद्धति ही ठीक थी? गुंजमाल और मोरचन्द्रिका का शृंगार, रूखा–सूखा भोग? जहाँ तक राग का सम्बन्ध है, अष्टछाप में तो उनके समय के भी चार गायक कवि हैं। मैंने इस सेवा–पद्धति में

जो परिवर्तन किया और जिस वैभव का समावेश किया, उसमें मेरा तो कोई स्वार्थ नहीं था। मुगल–दरबार के आकर्षण से जनसमुदाय को खींचकर आपके चरणों का आश्रय दिलाना ही इस परिवर्तन का उद्देश्य था और इसमें सफलता भी कम नहीं मिली। आज आपके दरबार के सम्मुख मुगल–दरबार एकदम फीका पड़ गया है। आपके दर्शन, आपके प्रसाद और आपके कीर्तन से जनसमुदाय का मानस सराबोर है और जो कुछ भी ये करते हैं, आपके ही प्रीत्यर्थ। ऐसे उत्सवों, ऐसे मनोरथों की किसी ने कभी कोई कल्पना तक न की थी। इन अवसरों पर जनसमुदाय कितना तल्लीन हो जाता है, वह उनके मुख–मण्डलों से दिखायी पड़ता है। आपकी सेवा–पद्धति में यह परिवर्तन कर क्या मैंने अपराध किया है? (फिर कुछ रुककर) हे नाथ! अब तो सहन नहीं होता। आपका यह विप्रलम्भ असहनीय हो रहा है। गजेन्द्र की पुकार सुन आप कैसे आतुर हो दौड़े थे। द्रौपदी का करुण–क्रन्दन भी आप सहन नहीं कर सके थे।स्वयं उसका चीर बन गये थे, जिसे खींच–खींचकर जिस दुश्शासन में दस हजार हाथियों का बल था, वह भी थक गया था। और भी किन–किन भक्तों की आपने किस–किस प्रकार पुकार सुनी है! पर प्रभो! गजेन्द्र, द्रौपदी और अधिकांश भक्तों की पुकार उनकी किसी निजी कामना की सिद्धि के लिये हुई है। मेरी कामना तो केवल आपके पवित्र दर्शन मात्र की है। उससे वंचित रहने का महान् दुःख मुझे क्यों? मेरी यह पुकार नहीं सुनेंगे? (फिर कुछ रुककर) यदि हृदय को थोड़ा–बहुत धीरज बँधता है तो उन विज्ञप्तियों की रचना और उन्हें आपकी सेवामें भेजने से। सुनिये, आप तो सब स्थानों में व्याप्त हैं। आप अप्राकृतिक नेत्रों से ही सब कुछ देखते हैं, अप्राकृतिक कानों से ही सब कुछ सुनते हैं। इस प्रकार से आप क्या मेरी यह प्रार्थना नहीं सुनेंगे?

(प्रार्थना पूरी होते–होते नेपथ्य से 'गिरिराजधरन की जय' के नारे सुन पड़ते हैं, जो ध्वनि निकट आती जा रही है। विट्ठलनाथजी का ध्यान उस ओर आकर्षित होता है। थोड़ी ही देर में गिरिधरजी का जन–समुदाय के साथ प्रवेश।)

एक नागरिक – (दण्डवत् करते हुए) पधारिये, जय, पधारिये। श्रीनाथजी की ड्योढ़ी आपके लिये खुल गयी।

दूसरा नागरिक – (दण्डवत् कर) इस वियोग का अन्त कर अब श्रीनाथजी के दर्शन कीजिये।

विट्ठलनाथ – (खड़े होकर, कुछ आश्चर्य से) क्या हुआ, कुछ समझ में नहीं आ रहा है।

तीसरा – (दण्डवत् कर) उस दुष्ट कृष्णदास को, जिसने श्रीनाथजी की ड्योढी आपके लिये बंद करवा दी थी, शासन ने बंदी बना लिया और शाही फरमान के द्वारा श्रीनाथजी की ड्योढ़ी आपके लिये खुलवा दी।

दूसरा – पुत्र हो तो ऐसा हो।

कुछ नागरिक – (एक साथ) धन्य, ऐसे पुत्र को धन्य है!

विट्ठलनाथ – (जिनका मस्तक इस चर्चा को सुनकर झुक गया था, सिर उठाते हुए, दीर्घ निःश्वास छोड़ धीरे–धीरे) – समझा, अब समझा। तो गिरिधर ने कृष्णदास को बंदी बनवाकर श्रीनाथजी की ड्योढ़ी मेरे लिये खुलवायी है?

एक नागरिक – इससे बड़ा कार्य इस समय गिरिधरजी को छोड़कर कोई नहीं कर सकता था।

बहुत–से नागरिक – (एक साथ) कोई नहीं, कोई नहीं।

विट्ठलनाथ – (जल्दी–जल्दी) पर मैं यह नहीं मानता। (गिरिधरजी से) गिरिधर! तूने यह बुरे–से–बुरा काम किया है।

श्रीनाथजी के अधिकारी को हमारे कुल का कोई व्यक्ति बंदी बनवाये और मैं शाही फरमान द्वारा श्रीनाथजी के दर्शन के लिये जाऊँ, यह असम्भव कल्पना है। श्रीनाथजी के विरह में तड़प–तड़पकर मैं अपने प्राणों को त्याग दूँगा। अब तक तो मैंने केवल अन्न छोड़ा था, अब तो जब तक कृष्णदास बन्धन से मुक्त न होंगे, तब तक मैं जल भी ग्रहण न करूँगा। मुझे श्रीनाथजी के दर्शन के लिये श्रीनाथजी के अधिकारी ही ले जा सकते हैं, शाही फरमान नहीं।

(सभी के मुख पर हवाइयाँ–सी उड़ने लगती है। सब आश्चर्य से स्तम्भित रह जाते हैं।)

(लघु यवनिका)

चौथा दृश्य

स्थान – वही जो तीसरे दृश्य में था।

समय – संध्या।

(उद्विग्न विट्ठलनाथजी इधर–उधर टहल रहे हैं। उनके मुख से निकल रहा है – 'यह क्या हुआ, क्या हुआ, प्रभो!' उसी समय नेपथ्य में गिरिराजधरन का जयघोष सुनायी पड़ता है, जो नजदीक आ रहा है। कृष्णदास का गिरिधर जी और जन–समुदाय के साथ प्रवेश। कृष्णदास अधेड़ वय का मोटा–ताजा, ऊँचा–पूरा व्यक्ति है। सफेद बगलबंदी और धोती पहने हुए है। सिर पर व्रज का छोटा–सा टोपा है। ललाट पर तिलक और छापे हैं।)

कृष्णदास – पधारिये, जय, पधारिये। मैं श्रीनाथजी का अधिकारी बंदीखाने से मुक्त हो, आपको श्रीनाथजी के मन्दिर में पधराने के लिये आया हूँ।

(कृष्णदास विट्ठलनाथजी के चरणों में साष्टांग दण्डवत् कर निम्नलिखित पद गाता है।)

पद

परम कृपाल श्रीवल्लभनंदन करत कृपा निज हाथ दै माथै।
जे जन सरन आय अनुसरहीं, गहि सौंपत श्री गोवर्धन नाथै।।
परम उदार चतुर चिंतामनि राखत भव धारा ते साथै।
भज कृष्णदास साज सब रहीं, जो जानै श्रीविट्ठल नाथै।।

(लघु यवनिका)

पाँचवाँ दृश्य

स्थान – जतीपुरा में गोवर्धन पर श्रीनाथजी के मन्दिर का सिंहद्वार।

समय – प्रदोष।

(सामने बड़ा भारी फाटक है, जिसके दोनों ओर सिंह बने हैं। सामने मैदान–सा है, जिसमें गोवर्धन की कुछ शिलाएँ दृष्टिगोचर होती हैं। श्रीनाथजी के शयन के दर्शन का समय है। नेपथ्य में उच्च स्वर में हरिधुन सुन पड़ती है। बीच–बीच में 'गिरिराजधरन की जय' शब्द भी होता है। हरिधुन करते हुए आगे–आगे अधिकारी कृष्णदास, उनके पीछे विट्ठलनाथजी, उनके पीछे गिरिधरजी और इन लोगों के पीछे वैष्णवों का एक समूह प्रवेश करता है। उत्साह चरम सीमा को पहुँच गया है।)

(यवनिका)

तीसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान – फतेहपुर सीकरी के किले में सम्राट् अकबर का शयनागार।

समय – रात्रि।

(लाल पत्थरों से निर्मित फतेहपुर सीकरीं के किले के इस कक्ष की दीवारें भी लाल पत्थरों की ही है। तीन ओर की दीवारें दिखती हैं, जो अत्यन्त भव्य है। दाहिनी ओर बाँयी दीवार के सिरों पर बड़े–बड़े दरवाजे हैं, जिनकी चौखटों और पल्लों की लकड़ी पर खुदाव का काम है। उन दरवाजों पर कमख्वाब के मेहराबदार परदे लगे हुए हैं। भूमि पर रंग–बिरंगा फूल–पत्ती वाला ईरानी कालीन है। पीछे की दीवार के दाहिनी ओर सोने के पायों वाला पलंग है, जिस पर श्वेत चादर और श्वेत खोली से ढके हुए तकिये लगे हैं। इसी दीवार के बाँयी ओर बैठने की एक बड़ी गादीदार चौकी (कुर्सी) और एक छोटी गादी पर चौकी रखी है। कक्ष की छत पर रेशमी जरी की चाँदनी लगी है, जिसमें झाड़–फानूस टँगे हैं। बड़ी चौकी पर सम्राट् अकबर बैठे हैं और छोटी पर राजा बीरबल। अकबर ढीला कुरता और ढीला पाजामा पहने हैं। सिर खुला हुआ है, जिस पर मुगलकाल के पट्टे दीख पड़ते हैं। अकबर के गले में बड़े–बड़े मोतियों का दो लड़ों का कंठा है। बीरबल राजसी वेश में है। घेरदार जामे के सदृश अंगरखा, पाजामा और मुगलकालीन पगड़ी, जिस पर रत्नजटित सिरपेंच बँधा है।)

अकबर – हाँ, मैं समझता हूँ मेरी सारी सल्तनत में विट्ठलनाथ के मानिंद कोई संत नहीं है। उन्होंने जिस तरह रूहानी और जिस्मानी बातों का मेल–मिलाप किया है, उस तरह शायद किसी दूसरे ने नहीं।

बीरबल – शायद ही नहीं, जहाँपनाह! तमाम तवारीख में ऐसे किसी शख्स की मिसाल नहीं मिलती।

अकबर – फिर उनका यह मानना कि तमाम काम खुदा के हैं और यही मानकर खुदा के लिये ही सारे काम करना एक खसूसियत है।

बीरबल – बेशक!

अकबर – और देखो, बीरबल! अपने छोटे–सें कच्चे मकान में ज्यादा–से–ज्यादा सादगी से रहते हैं। साथ ही मुनासिब मौकों पर शाही लिबास भी होता है।

बीरबल – फिर दूसरी बातों पर भी गौर कीजिये। श्रीनाथजी के अधिकारी की बंदीखाने से रिहाई के बिना पानी भी न पीने की शपथ और कौन ले सकता था!

अकबर – और फिर कैसे अधिकारी की रिहाई के मुताल्लिक शपथ, जिसने उनके लिये श्रीनाथजी की ड्योढ़ी छः महीने से बंद करा दी थी।

बीरबल – माँ–बदौलत शायद जानते होंगे कि उन छः महीनों में विट्ठलनाथजी ने अन्न छोड़ दिया था और यह प्रतिज्ञा की थी कि वे अन्न तभी खायेंगे, जब उन्हें श्रीनाथजी के दर्शन मिल जायेंगे।

अकबर – और ये दर्शन भी उन्होंने शाही फरमान पर करना मंजूर नहीं किया। (कुछ रुककर) हालाँकि उनके बड़े भाई के लड़के पुरुषोत्तम की इतनी कम उम्र में मौत होना एक अफसोस की बात है, पर परवरदिगार जो कुछ करता है, अच्छे के लिये ही करता है। इसकी वजह अब श्रीनाथजी के मन्दिर के तिलकायत का झगड़ा निपट गया और विट्ठलनाथ तिलकायत हो गये।

बीरबल – आप ठीक फरमा रहे हैं, जहाँपनाह! पर आप शायद जानते होंगे कि विट्ठलनाथजी को तिलकायत होने की जरा भी परवाह नहीं थी। वे तो कहते थे, उनका काम सेवा करना है। अपने बड़े भाई के तिलकायत रहते हुए भी वे सेवा करते थे और चाहे कोई भी तिलकायत हो, वे सेवा करते रहेंगे।

अकबर – जानता हूँ, यही सब तो उनकी खूबी है।

(कुछ देर निःस्तब्धता)

अकबर – बीरबल! उस दिन जब तुम मुझे वेष बदलकर श्रीनाथजी के दर्शन कराने ले गये थे, तब जानते हो, मुझे क्या दीखा?

बीरबल – क्या, जहाँपनाह?

अकबर – श्रीनाथजी के एक बाजू नवनीतप्रिय पालना झूल रहे थे और उन्हें झुला रहे थे विट्ठलनाथ। पहले तो मुझे यही दीखा कि विट्ठलनाथ नवनीतप्रिय को झुला रहे हैं, पर फिर एकदम से सारा नजारा बदल गया। दीखा कि पालने में विट्ठलनाथ बैठे हैं और नवनीतप्रिय कृष्ण की शक्ल में उन्हें पालना झुला रहे हैं। कभी दिखता, विट्ठलनाथ नवनीतप्रिय को झुला रहे हैं और कभी दिखता नवनीतप्रिय विट्ठलनाथ को। जब तक मैं दर्शन करता रहा, इसी तरह का खेल चलता रहा।

बीरबल – मुझे वह अनुभव नहीं हुआ, जो माँ–बदौलत को हुआ। बात यह है कि मेरा दिल अभी वैसा साफ–सुथरा नहीं बन पाया है, जैसा जहाँपनाह का है। ऐसा अनुभव उन्हीं को हो सकता है, जिनका दिल स्फटिक के माफिक निर्मल हो जाय। और फिर एक बात और है।

अकबर – क्या?

बीरबल – वल्लभाचार्यजी के सम्प्रदाय का सिद्धान्त है – शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद।

अकबर – इन लफ्ज़ों को मुझे ज़रा और समझाओ, क्योंकि तुम जानते हो, मुख्तलिफ सम्प्रदायों के उसूलों को समझने में मेरी बड़ी दिलचस्पी है।

बीरबल – 'शुद्धाद्वैत' का मतलब है – वह अद्वैत, जो शुद्ध है। और 'ब्रह्मवाद' का मतलब है – सब कुछ, जो दिखायी देता है और जो नहीं भी दिखता, वह ब्रह्म है। आप शंकराचार्यजी के सिद्धान्त को तो भलीभाँति जानते हैं?

अकबर – हाँ, बीरबल! उनका कहना है – 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या'।

बीरबल – ठीक फरमा रहे हैं, जहाँपनाह! और इसीलिये शंकराचार्यजी के सम्प्रदाय के वाद को 'मायावाद' कहा गया है।

अकबर – और वल्लभाचार्य का सम्प्रदाय क्या मानता है?

बीरबल – वह मानता है कि जगत् भी ब्रह्म का ही रूप है, इसलिये वह मिथ्या नहीं हो सकता। जैसा कि मैंने अर्ज किया – वह सभी कुछ ब्रह्म है, यह मानता है, इसलिये जो नवनीतप्रियजी हैं, वही विट्ठलनाथजी और जो विट्ठलनाथजी हैं, वही नवनीतप्रियजी। जुदा–जुदा शक्लें होने पर भी सभी ब्रह्म हैं, जिसका आपने दर्शन ही कर लिया।

अकबर – (कुछ सोचते हुए) सच बात तो यह है बीरबल! कि इन बातों के मुताल्लिक सच्ची बात समझी ही नहीं जा सकती।

बीरबल – पर, जहाँपनाह! उसकी बखूबी कल्पना की जा सकती है।

(कुछ देर निःस्तब्धता)

अकबर – तुम विट्ठलनाथ को समझा–बुझाकर फतेहपुर सीकरी तो ले आये, पर मेरी सल्तनत के इस वक्त के सबसे बड़े संत को मैं जो सबसे बड़ा मजहबी खिताब 'गोसाई' देना चाहता हूँ और श्रीनाथजी के मन्दिर के लिये जो बड़ी भारी जागीर, वह लेना उन्होंने मंजूर कर लिया?

बीरबल – दो शर्तों पर।

अकबर – कौन–सी शर्तें हैं वे?

बीरबल – एक शर्त यह है जहाँपनाह! कि हिन्दुओं को हिन्दू होने की वजह से जो कर देना पड़ता है, वह खत्म कर दिया जाय और दूसरी यह कि आपके राज्य में गोकुशी बंद हो।

(अकबर गम्भीर विचार में डूब जाते हैं। उनका चेहरा झुक जाता है। बीरबल एकटक उनकी ओर देखते हैं। कुछ देर निःस्तब्धता।)

अकबर – (सिर उठाते हुए धीरे–धीरे) बीरबल! तुमसे ज्यादा इस बात को कोई नहीं जानता कि मैं इंसान–इंसान में कोई फर्क नहीं समझाता। मेरे लिये हिंदू और मुसलमान सब एक–से हैं। मैं बहुत दिनों से खुद यह सोच रहा था कि हिंदुओं का यह कर बंद होना चाहिये और जहाँ तक गोकुशी का मामला है, बहुत कुछ सोचने–विचारने के बाद मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि इस मुल्क में वही सल्तनत मुद्दतों चल सकती है,जिसमें गायकी कुरबानी बंद कर दी जाय।

बीरबल – आपने अगर यह किया तो तवारीख में आपका नाम सुनहरे लफ्जों में लिखा जायगा और मुगल हुकूमत मुद्दतों चलेगी।

(कुछ देर निस्तब्धता)

अकबर – तुम विट्ठलनाथ से कह दो कि मैं एक दरबार करके उन्हें 'गोसाईं' का खिताब दूँगा और उसी दरबार में यह ऐलान करूँगा कि हिन्दुओं को हिन्दू होने की वजह से जो कर देना पड़ता है, वह अब नहीं लिया जायगा और मेरी सल्तनत में गोकुशी नहीं होगी।

बीरबल – धन्य है आप, धन्य है जहाँपनाह!

अकबर – (कुछ रुककर) अच्छा, देखो, मैंने सुना है कि श्रीनाथजी का ठाट–बाट बढ जाने की वजह से उनके मन्दिर पर कर्ज हो गया है।

बीरबल – यह सच बात है।

अकबर – मैं नहीं चाहता कि श्रीनाथजी के ठाट–बाट में किसी तरह की कमी हो; क्योंकि यह ठाट–बाट अवाम को मजहब की तरफ खींचता है। श्रीनाथजी का आगे का खर्च चलाने में जो जागीर मैं दे रहा हूँ, उससे मदद मिलेगी, लेकिन जो कर्ज हो गया है, उस रकम को तुम शाही खजाने से लेकर अपने नाम से विट्ठलनाथ को देकर इस कर्ज को चुका दो और यह बात पोशीदा रहे कि तुम यह कर्ज शाही खजाने से पटा रहे हो।

बीरबल – यह रकम भी शाही खजाने के नाम से क्यों न दी जाय?

अकबर – इसलिये कि श्रीनाथजी की तो दूसरी बात है। विट्ठलनाथ जिस तरह इस वक्त के सबसे बड़े संत हैं, उसी तरह श्रीनाथजी सबसे बड़े देव। जागीरों की बात अलग है। उसके लिये मैंने कुछ उसूल तय कर दिये हैं। जागीर उन्हीं को मिल सकती है, जो उन उसूलों पर चलें। हाँ, उसे कम–ज्यादा करना मैंने अपने हाथ में रखा है; पर सरकारी खजाने से कर्ज पटाने के लिये इस तरह रकमें दी जाने लगीं तो बहुत बड़ी गड़बड़ मच सकती है। ऐसी नजीरों को सामने रख कुछ धोखा देने वाले भी उससे नाजायज फायदा उठा सकते हैं। मैं जानता हूँ, तुमने मेरे इतने नजदीक रहकर भी कोई बहुत बड़ी दौलत इकट्ठी नहीं की है। इसलिये श्रीनाथजी का कर्ज तुम अपने पास से नहीं पटा सकते। वह रकम शाही खजाने से मैं तुम्हें दूँगा और तुम उससे वह कर्ज पटा देना। यह मंजूरी तुम विट्ठलनाथ से और ले लो।

बीरबल – आप जो दरबार करके उन्हें 'गोसाई' का खिताब दे रहे हैं और श्रीनाथजी के मन्दिर को जागीर, साथ ही हिन्दुओं का कर और गोकुशी बंद करने का ऐलान कर रहे हैं, उसके बाद इसके मुताल्लिक मैं विट्ठलनाथजी से बात करूँगा।

अकबर – (कुछ विचार करते हुए) यह ठीक है। (कुछ रुककर) बीरबल! श्रीनाथजी की सेवा ने मुगल दरबार की शान–शौकत को भी फीका कर दिया है। आज मेरे दरबार में कुछ मुसाहबों और खुदगर्जों को छोड़कर कौन आता है? अवाम तो श्रीनाथजी की तरफ ही खिंचे हुए हैं।

बीरबल – आप खुद भेष बदलकर भी श्रीनाथजी के दर्शन के लिये जाते हैं।

(दोनों हँसते हैं। अकबर खड़े होते हैं। बीरबल भी खड़े होते हैं।)

(लघु यवनिका)

दूसरा दृश्य

स्थान – फतेहपुर सीकरी के किले का दीवाने आम।

समय – मध्याह्न।

(दीवानेआम की तीन ओर की दीवारें दिखती हैं, जो लाल पत्थर की हैं। दीवानेआम की भूमि पर लम्बी गद्दियाँ बिछी हुई हैं, जिस पर दरबारी बैठे हैं। दीवानेआम में शाही बैठक सुन्दरता से सजी हुई है। बैठक के पीछे दरबारी पोशाक पहने हुए दो चँवर वाले सुरागाय की पूँछ के श्वेत चँवर लिये और दो व्यंजनवाहक दो जरी के पंखे लिये हुए खड़े हैं। नेपथ्य से शहनाई की मंदध्वनि आ रही है। कुछ ही देर में नेपथ्य में "बालघर, बाअदब, बामुलाहिजा, होशियार, शहंशाहे हिन्दोस्तां तशरीफ ला रहे हैं" आवाज आती है। उसके बाद ही दो छड़ीदार धीरे–धीरे दाहिनी ओर से प्रवेश करते

हैं। सारे दरबारी खड़े हो जाते हैं। अकबर का शाही लिबास में प्रवेश। वे अपने पीठ पर आसीन होते हैं। उसके तुरन्त बाद शब्द होता है, 'विट्ठलनाथ–जय विट्ठलनाथ'। प्रतिहारी के साथ बाँयी ओर से विट्ठलनाथजी का प्रवेश। वे आज मुगलकाल के पूरे शाही लिबास में हैं। उनके अपूर्व सौन्दर्य और इस लिबास के कारण उस सौन्दर्य के और निखर जाने के कारण अकबर तक का सौन्दर्य फीका पड़ जाता है। विट्ठलनाथजी शाही बैठक में ही बैठते हैं।)

अकबर – इस मुल्क में कई मजहब हैं और उनको मानने वाली बड़ी–बडी जमातें। मैंने सल्तनत की बागडोर सँभालने के पहले यह तस्फिया कर लिया था कि मेरी हुकूमत में ये सारे मजहब और इनको मानने वाले एक नजर से देखे जायेंगे। हिन्दू और मुसलमान में कोई फर्क मैं नहीं समझता। जिस खुदा ने मुसलमानों को बनाया है, उसी ने हिन्दुओं को भी। जैसे आँख, नाक, कान, हाथ, पैर मुसलमानों के हैं, वैसे ही हिन्दुओं के भी। हिन्दोस्तान बड़ा पुराना मुल्क है। इस मुल्क की तहजीब की तवारीख से यह मालूम होता है कि इस मुल्क के ऋषि–मुनियों, संतों–भक्तों और विचारकों ने इस बात को समझ लिया था। इस मुल्क की तहजीब का उसूल एक ही लफ्ज में आ ज़ाता है, वह लफ है 'अभेद'। अभेद पर चलने वाली इस तहजीब में हमें जो एक–दूसरे के उसूलों को इज्जत की निगाह से देखने की बात मिलती है, वह दुनिया की और किसी तहजीब में नहीं। इसीलिये कोई किसी का किसी तरह भी मन दुखाये, यह बात हिन्दोस्तान की तहजीब के खिलाफ जाती है। जब सारे इंसान एक–से हैं, तब हिन्दुओं पर हिन्दू होने की वजह से कोई कर लगे, यह मैं तो सोच भी नहीं सकता। इसी तरह अगर गोकुशी से किसी जमात या फिरके का मन दुखता है तो वह

भी मेरी सल्तनत में नहीं चल सकती। इसलिये मैं ऐलान करता हूँ कि हिन्दुओं का यह कर आगे से नहीं लिया जायगा और इस मुल्क में गाय की कुर्बानी बिल्कुल बंद हो जायगी।

दरबारी – (एक स्वर में) धन्य है...धन्य है।

अकबर – मैंने अभी–अभी कहा कि हुकूमत में सारे मजहब और उनको मानने वाले एक नजर से देखे जायेंगे। सभी मजहबों के गुरु और नबी की एक–सी इज्जत रहेगी। जहाँ तक मुझे पता लगा है, आज वल्लभ–सम्प्रदाय के आचार्य विट्ठलनाथजी से बड़ा इस मुल्क में कोई गुरु और संत नहीं है। इसलिये मैं वह 'गोसाईं' खिताब उन्हें देता हूँ, जो मजहबी नजर से हिन्दुओं का आज सबसे बड़ा खिताब है।

दरबारी – गोसाईं विट्ठलनाथजी की जय!

अकबर – इसी के साथ मैं एक बड़ी जागीर श्रीनाथजी के मंदिर के खर्च के लिये लगाता हूँ।

दरबारी – श्रीगोवर्धननाथजी की जय!

अकबर – एक बात मैं और साफ कर देता हूँ कि जागीर के मुताल्लिक मैंने कुछ उसूल तय किये हैं। उन उसूलों पर चलने वाले दूसरे मजहबों की संस्थाओं को भी इस तरह की जागीरें मिल सकती हैं। मेरी हुकूमत में इस मुल्क की तहजीब जिस एक लफ्ज 'अभेद' में आ जाती है, उसके मुताबिक सारे काम होंगे।

दरबारी – धन्य है, धन्य है।

अकबर – मुझे इस बात से निहायत खुशी है कि विट्ठलनाथजी ने हमारी दरख्वास्त को मंजूर कर इस 'गोसाईं' खिताब और जागीर को कबूल कर लिया है।

(अकबर खड़े होते हैं। गोसाईजी भी खड़े होते हैं। सारे दरबारी खड़े होते हैं।)

(लघु यवनिका)

तीसरा दृश्य

स्थान – फतेहपुर सीकरी के किले का वह कक्ष, जिसमें गोसाईं विट्ठलनाथजी ठहरे हैं।

समय – अपराह्न।

(कक्ष की तीन ओर की दीवार दिखती है। दाहिनी और बायीं ओर की दीवार में दो छोटे–छोटे दरवाजे हैं। यद्यपि दीवारें लाल पत्थर की ही हैं, तथापि दरवाजों की चौखटों और पल्लों की लकड़ी पर कोई खुदाव आदि का काम नहीं है। कक्ष की छत पर सफेद चाँदनी तनी हुई है, पर इससे कोई झाड़–फानूस आदि नहीं लटक रहे हैं। कक्ष की भूमि लाल पत्थरों से ही पटी हुई है। इस पर दो आसनों के अतिरिक्त और कोई बिछायत नहीं है। कक्ष एकदम सादा है, पर स्वच्छ। एक आसन पर गोसाईं विट्ठलनाथजी और दूसरे पर दामोदरदासजी हर्षानी बैठे हैं। इस समय गोसाईंजी की वेशभूषा उपरना और धोती ही है, राजसी वेशभूषा नहीं। कोई आभूषण वे नहीं पहने हें। हर्षानीजी भी धोती और उपरना ही धारण किये हैं।)

गोसाईंजी – हर्षानीजी! आज अभी थोड़ी देर पहले ही राजा बीरबल मुझसे मिलने आये थे और उन्होंने जो प्रस्ताव किया है तथा उस प्रस्ताव की मेरे मन पर जो प्रतिक्रिया हुई है, उसी पर सम्मति देने के लिये मैंने आपको बुलाया है।

हर्षानी – मैं तो सदा ही सेवा के लिये उपस्थित हूँ, कृपानाथ! राजा बीरबल का क्या प्रस्ताव है?

गोसाईंजी – उनका प्रस्ताव है कि श्रीनाथजी के मन्दिर पर जो ऋण है, उसे उनसे धन लेकर चुका दिया जाय।

हर्षानी – और आपकी इस प्रस्ताव पर क्या प्रतिक्रिया है?

गोसाईंजी – इस प्रस्ताव पर मुझे पिताजी के जीवन की वह घटना स्मरण आयी, जो राजा कृष्णदेव राय के यहाँ उस समय हुई थी, जब कृष्णदेव राय ने उनका सौ मन सोने से कनकाभिषेक किया था और थाल भरकर मोहरें उन्हें भेंट में रखी थीं। पिताश्री ने कनकाभिषेक का वह सोना लेना अस्वीकृत कर दिया था और थालभर मोहरों में से केवल सात मोहरें दैवी द्रव्य मानकर अंगीकार की थी। मैं राजा बीरबल का वह प्रस्ताव स्वीकार करने को तैयार नहीं हूँ; क्योंकि जो द्रव्य राजा बीरबल मुझे श्रीनाथजी का ऋण चुकाने के लिये देना चाहते हैं, वह दैवी द्रव्य नहीं हो सकता। या तो वह गुप्तरूप से राज्यकोष से लिया जाएगा या ऐसा द्रव्य होगा, जो बीरबल ने न जाने किन उपायों से एकत्रित किया होगा। न तो राजकोष का धन दैवी द्रव्य हो सकता; क्योंकि न जाने कितने प्रकार से वह राजकोष में आता है और न बीरबल का द्रव्य ही दैवी द्रव्य हो सकता; क्योंकि उसका परिमाण इतना अधिक होगा कि बीरबल उसे नैतिक उपायों से एकत्रित कर ही नहीं सकते।

हर्षानी – यह तो ठीक है।

गोसाईंजी – आप कह सकते हैं कि फिर मैंने सम्राट् अकबर से श्रीनाथजी के लिये जागीर कैसे ली? जागीर लेना एकदम दूसरी बात है। जागीर का अर्थ होता है, ऐसी स्थावर–सम्पत्ति जो कृषकों की आय से सम्बन्ध रखती है और जागीर के रूप में उसे लेने का अर्थ केवल यह होता है कि कृषकों की आय का जो भाग शासन को जाता है, वह शासन नहीं लेगा और वह जागीरदार

को मिलेगा। जो जागीर मैंने श्रीनाथजी के लिये स्वीकार की है, उस जागीर की उतनी ही आय मैं लूँगा, जो शास्त्र के अनुसार ग्राह्य है अर्थात् कृषकों की आय का एक षष्ठांश। फिर इस आय–धन को लेने के समय भी मैं यह देखूँगा कि ऐसे कृषकों से तो धन नहीं आ रहा है, जो किसी प्रकार के भी कष्ट में हैं। हर्षानीजी! मानव को अपना जीवन नैतिक रूप से चलाने के लिये धर्मशास्त्रों का ही आश्रय लेना चाहिये। हमारे धर्मशास्त्रों में मनुस्मृति का प्रधान स्थान है। मनुस्मृति में आदेश है कि राज्य को प्रजा से कर रूप में उसकी आय का एक छठा भाग लेना चाहिये। अतः श्रीनाथजी के लिये जागीर लेने और श्रीनाथजी के ऋण को चुकाने के लिये राजा बीरबल से धन लेने में आकाश–पाताल का अन्तर है।

हर्षानी – आपकी विवेकबुद्धि इतनी उच्च कोटि की हो गयी है कि आपके निर्णय सर्वथा धर्मपूर्ण और नैतिकता से भरे हुए होते हैं।

गोसाईंजी – तो आपकी भी यही सम्मति है न कि राजा बीरबल से यह धन न लिया जाय।

हर्षानी – मैं आपसे सर्वथा सहमत हूँ; जय!

गोसाईंजी – श्रीनाथजी के मन्दिर पर ऋण श्रीनाथजी की वर्तमान वैभवशाली सेवा पद्धति से ही हुआ है। वह ऋण दैवी द्रव्य का ऋण है और श्रीनाथजी के प्रताप से दैवी द्रव्य द्वारा ही चुकेगा।

हर्षानी – इसमें भी मुझे कोई संदेह नहीं है।

गोसाईंजी – फतेहसिंह सीकरी आकर हमने कोई भूल की है, ऐसा तो मुझे नहीं दिखता। 'गोसाईं' उपाधि एक धार्मिक उपाधि है। इसे यदि मैंने स्वीकार किया तो इससे सम्प्रदाय का महत्त्व बढ़ेगा। श्रीनाथजी के लिये जागीर स्वीकार की तो इसमें भी

मुझे कोई अनौचित्य नहीं दिखता। फिर हम दोनों बातों को स्वीकार करने के पहले मैंने उस राज्यकर को बंद करा दिया, जो हिन्दुओं को हिन्दू होने के कारण देना पड़ता था तथा सारे राज्य में गोवधबंदी की घोषणा करा दी।

हर्षानी – यह आप ही करा सकते थे।

गोसाईंजी – परन्तु अब फतेहपुर सीकरी में थोड़ा भी ठहरना मैं ठीक नहीं समझता। यहाँ राज्य के न जाने कितने प्रलोभन हैं। भगवान् ने भगवद्गीता में तीन नरक के द्वार कहे हैं – काम, क्रोध और लोभ। 'काम' से भगवान् का अर्थ केवल उस काम–वासना से नहीं है, जिसकी उत्पत्ति पुरुष–स्त्री के आपसी संसर्ग में रहती है। यहाँ काम से अर्थ है, सब प्रकार की इच्छाओं का। और सारी इच्छाओं की पूर्ति सम्भव नहीं है, अतः जब इच्छाओं की पूर्ति नहीं होती, तब क्रोध की उत्पत्ति होती है। फिर फतेहपुर सीकरी के सदृश स्थान में रहने से नाना प्रकार के लोभ आ सकते हैं; अतः राजा बीरबल को उनके प्रस्ताव की अस्वीकृति दे, हम लोगों को तत्काल फतेहपुर सीकरी छोड़ देना चाहिये।

हर्षानी – धन्य है, आपके सभी निर्णयों को धन्य है।

(लघु यवनिका)

चौथा दृश्य

स्थान – फतेहपुर सीकरी के किले में अकबर का शयन–कक्ष।

समय – रात्रि।

(यह वही कक्ष है, जो इस अंक के पहले दृश्य में था। सम्राट् अकबर कुछ उद्विग्नता से इधर–उधर टहल रहे हैं। बीरबल का प्रवेश।)

अकबर – (बीरबल को देखते ही जल्दी से) तो गोसाईंजी ने क्या जवाब दिया?

बीरबल – उन्होंने श्रीनाथजी के मन्दिर का कर्ज चुकाने के लिये जो धन मैं देना चाहता था; उसे मंजूर नहीं किया, जहाँपनाह!

अकबर – (कुछ आश्चर्य से) अच्छा?

बीरबल – जी हाँ, उन्होंने कहा, वह दैवी द्रव्य नहीं है।

अकबर – जो राज्य की जागीर उन्होंने श्रीनाथजी के लिये मंजूर की, वह दैवी द्रव्य है?

बीरबल – उन्होंने कहा, जागीर की बात दूसरी है। उसमें किसानों को खून का पसीना बनाने पर जो आमदनी होती है, धर्मशास्त्र के मुताबिक उसका छठा हिस्सा मिलता है, जो दैवी द्रव्य है; पर जो धन मैं श्रीनाथजी का कर्ज चुकाने को देना चाहता हूँ, वह न जाने किन तरीकों से इकट्ठा किया गया है।

अकबर – एकदम नया उसूल है और ऐसा उसूल, जो सादी खुदगर्जी को लात मारता है।

बीरबल – गोसाईंजी फतेहपुर सीकरी में और किसी लोभ–लालच में न पड़ जायें, इसलिये वे कल अलस–सुबह ही फतेहपुर सीकरी छोड़ रहे हैं।

अकबर – बड़ा–बहुत बड़ा आदमी है।

बीरबल – मैंने अपना गुरु किसी छोटे आदमी को थोड़े ही बनाया है, जहाँपनाह! मेरी कतई राय है कि आज हिन्दोस्तान में वे सबसे बड़े संत हैं।

(लघु यवनिका)

पाँचवाँ दृश्य

स्थान – फतेहपुर सीकरी का बुलन्द दरवाजा।

समय – उषाकाल।

बड़ा भारी फाटक है। फाटक पर निम्नलिखित शिलालेख खुदा हुआ है –

शिलालेख

'यह दुनिया एक पुल के सदृश है। इस पुल पर से निकल जा, लेकिन इस पर मकान बनाने का विचार न कर। जो यहाँ घड़ीभर भी रुकने की इच्छा करेगा, वह सदैव के लिये यहीं ठहरने का इच्छुक हो जायेगा। इस दुनिया का जीवन तो क्षणमात्र है। उसे भगवत्स्मरण तथा भगवद्भक्ति में बिता। भगवान् की उपासना के सिवा और सब कुछ निरर्थक है, असार है।'

दरवाजे के दोनों ओर किले की लाल पत्थर की विशाल प्राचीर दिखायी देती है। गोसाईंजी और हर्षानीजी कुछ वैष्णवों के साथ दरवाजे में से बाहर निकल रहे हैं। सब लोग उच्चस्वर से हरिधुन कर रहे हैं।

(यवनिका)

चौथा अंक

पहला दृश्य

स्थान – गढ़ा (मध्यप्रदेश) में विष्णुताल।

समय – अपराह्न।

(बीच में एक छोटे–से सरोवर का कुछ भाग दिखायी देता है, जो छोटी–छोटी पहाड़ियों से घिरा हुआ है। ये पहाड़ियाँ श्याम शिलाखण्डों की हैं, जो यत्र–तत्र पेड़–पौधों–लताओं से आच्छदित

हैं। इन हरित पेड़ों आदि के बीच–बीच में काले शिलाखण्ड दिखायी देते हैं। यह श्याम और हरे रंग का मिश्रण दृश्य को बड़ी रमणीयता दे रहा है। चारों ओर घना जंगल है। इन पहाड़ियों और जंगली वृक्षों का प्रतिबिम्ब इस सरोवर पर पड़ रहा है, जिससे दृश्य और सुन्दर हो गया है। कुछ गढ़ा–निवासी खड़े हुए बातें कर रहे हैं। सबकी वेशभूषा उस समय के बुंदेलखण्ड के कृषकों की–सी है, परन्तु सबके ललाट पर वल्लभ–सम्प्रदाय का तिलक और छापे लगे हैं।)

एक – ऐसा विद्वान्, विचारशील, त्यागी और चमत्कारी व्यक्ति कदाचित् ही कहीं हो।

दूसरा – हाँ, गोसाईं विट्ठलनाथजी के सदृश महापुरुष देखा क्या, सुना भी नहीं था।

तीसरा – सम्राट् अकबर को इतना प्रभावित कोई हिन्दू तो क्या, मुल्ला या मौलवी तक नहीं कर सका।

चौथा – हाँ, 'गोसाईं' की सबसे बड़ी हिन्दू पदवी अकबर ने उन्हें दी और कितनी बड़ी जागीर श्रीनाथजी के मन्दिर के पीछे लगा दी।

पाँचवाँ – और जागीर स्वीकार करने पर भी गोसाईंजी ने श्रीनाथजी के कृष्ण भंडार का ऋण चुकाने के लिये राजा बीरबल से धन लेना मंजूर नहीं किया।

दूसरा – इस सम्बन्ध में उनका सिद्धान्त स्पष्ट है। वे अपने पिता की भाँति दैवी द्रव्य ही लेते हैं। जागीर का धन भी जितना शास्त्र के अनुसार लिया जा सकता है (अर्थात् उपज का छठा हिस्सा), उतना ही कृषकों से लेंगे और फिर यह देख लेंगे कि कृषक कोई कष्ट पाकर तो नहीं दे रहा है। उसे वे दैवी द्रव्य

मानेंगे। राजा बीरबल का धन उन्होंने इसलिये स्वीकार नहीं किया कि वह न जाने किन मार्गों से इकट्ठा किया गया हो।

पहला – और उनका चमत्कार हम गढ़ा–निवासियों ने तब देखा, जब उनके कुछ चाकरों ने 'इस्तु–इस्तु' कहकर अग्नि माँगी और उनकी यह भाषा समझ में न आने के कारण किसी ने उन्हें अग्नि नहीं दी। उनके ठाकुरजी के कामों में बिना अग्नि के बाधा पड़ रही थी और विलम्ब हो रहा था; अतः कुछ क्षोभ से उनके मुँह से निकल गया, 'क्या इस गाँव में अग्नि नहीं है'। उनके मुख से यह निकलते ही सारे गढ़ा की अग्नि बुझ गयी और हाहाकार मच गया। झुंड–के–झुंड नागरिक–यहाँ तक कि हमारी महारानी दुर्गावती भी उनके पास दौड़े हुए आये।

दूसरा – हाँ, यह बात फैलते देरी नहीं लगी कि उनके मुख से यह निकलते ही कि 'क्या इस गाँव में अग्नि नहीं है' गाँव की अग्नि बुझ गयी।

तीसरा – और जब महारानी तथा नागरिकों ने प्रार्थना की कि 'फिर से अग्नि जल उठे', तब उनके मुख से 'तथास्तु' शब्द निकलते ही सब जगह अग्नि प्रज्वलित हो उठी।

पहला – मैंने कहा न, ऐसा चमत्कारी व्यक्ति कहीं न होगा, जिसके अधीन सृष्टि के पाँचों तत्त्व भी हो।

चौथा – सुना है कि उनकी धर्मपत्नी, जिन्हें ये लोग 'बहूजी महाराज' कहते हैं, अब नहीं है।

पाँचवाँ – हाँ, जतीपुरा में मैंने देखा है कि श्रीनाथजी इस वैभवशाली सेवा में बहूजी महाराज का कितना अधिक हाथ था।

दूसरा – अब हमारी महारानी के आग्रह से पुरानी बहूजी महाराज के स्थान पर नयी बहूजी आ जायेंगी।

पहला – ये फिर से विवाह करना स्वीकार करें, तब तो।

तीसरा – इस अग्निकाण्ड की घटना के कारण हमारी महारानी पर उनका अत्यधिक प्रभाव पड़ा है। वे उनकी दीक्षा से दीक्षित हो गयी हैं और जितना प्रभाव महारानी पर उनका पड़ा है, उससे कम प्रभाव महारानी का भी उन पर नहीं है। अतः वे महारानी का आग्रह नहीं टाल सकेंगे।

पहला – नहीं, महारानी पर उनका जितना प्रभाव है, उतना महारानी का उन पर नहीं। तुम्हें पता नहीं है, महारानी ने सोमवती अमावस्या पर जिन 108 गाँवों को दान करने का संकल्प किया था, उन गाँवों को महारानी जब उन्हें भेंट करने गयीं, तब उस भेंट को उन्होंने स्वीकार नहीं किया और कहा कि 'दान में दी हुई वस्तु हम ग्रहण नहीं कर सकते।' उन्होंने वे गाँव यहाँ के भट्टों को बाँट दिये। अतः महारानी की दूसरा विवाह करने के सम्बन्ध में यह विनती वे स्वीकार करेंगे, यह कैसा माना जाय।

(नेपथ्य में कुछ हल्ला होता है। नागरिकों का ध्यान उस ओर आकर्षित होता है।)

कुछ नागरिक – (एक साथ) देखो–देखो, गोसाईंजी इधर ही पधार रहे हैं।

दूसरे कुछ नागरिक – (एक साथ) हमारी महारानी भी कदाचित् उनके साथ आ रही हैं।

(गोसाईंजी का कुछ वैष्णवों और महारानी दुर्गावती के साथ प्रवेश। गोसाईंजी उपरना और धोती ही धारण किये हैं। नागरिक उस काल के बुन्देलखण्ड के कृषकों की–सी वेशभूषा में हैं, पर सबके ललाट पर वल्लभ–सम्प्रदाय का तिलक और छापे लगे हुए हैं। पहले वाले नागरिक आगंतुकों के साथ बैठ जाते हैं।

महारानी अधेड़ अवस्था और बलिष्ठ देह की ऊँची–पूरी सुन्दर महिला हैं। रंग गोरा है। उनका उस काल का मर्दाना सैनिक वेष है। दो भृत्य सरोवर के एक चौड़े घाट पर दो आसन बिछाते हैं। विट्ठलनाथजी एक आसन पर बैठते हैं। दुर्गावती दूसरी आसन को हटाते हुए भूमि पर ही यह कहते हुए बैठती है – 'जय के सम्मुख मैं आसन पर बैठूँ?')

गोसाईंजी – महारानीजी! प्राकृतिक दृष्टि से आपका यह गढ़ा–क्षेत्र सचमुच ही बड़ा सुन्दर है।

दुर्गावती – आपके यहाँ पधारने से इसकी सुन्दरता निखर गयी हैं।

गोसाईंजी – कितनी रमणीय पहाड़ियाँ! कितना मनोरम वन और बीच–बीच में स्फटिक मणि के सदृश श्वेत निर्मल जल से भरे हुए ये सरोवर। व्रजमण्डल से ही यहाँ की प्राकृतिक छटा का मिलन हो सकता है।

दुर्गावती – परन्तु जय! उस क्षेत्र में तो आनन्दकंद भगवान् कृष्णचन्द्र की लीलाएँ हुई थीं। वह सौभाग्य इस क्षेत्र का कहाँ?

गोसाईंजी – हाँ, यह अन्तर तो अवश्य है।

दुर्गावती – फिर, कृपानाथ! आज भी वहाँ श्रीनाथजी के रूप में भगवान् श्रीकृष्ण ही विराजे हैं। मेरा तो दुर्भाग्य है कि अब तक मैं श्रीनाथजी के दर्शन नहीं कर सकी; परन्तु अब यदि कृपानाथ ने मेरा प्रस्ताव स्वीकार कर लिया तो सतत ही मुझे श्रीनाथजी के दर्शन मिलते रहेंगे।

गोसाईंजी – (मुस्कराते हुए) और यदि मुझे आपका प्रस्ताव स्वीकार न हुआ तो आप जतीपुरा नहीं आयेंगी?

दुर्गावती – यह मैं थोड़े ही कहती हूँ। परन्तु मैंने सुना है कि रूक्मिणीजी का श्रीनाथजी की वर्तमान वैभवशाली सेवा में कितना हाथ था। मैं चाहती हूँ कि उनके स्थान पर मेरे राज्य की ही एक सुशील कन्या पहुँचे और श्रीनाथजी की सेवा में रूक्मिणीजी के लीला में पधारने से जो एक प्रकार की शून्यता–सी आ गयी है, वह भर जाय।

गोसाईंजी – पर, महारानी! यह सम्भव ही कैसे है। पिताश्री विवाह ही नहीं करना चाहते थे; परन्तु सम्प्रदाय के हित के लिये संतान की आवश्यकता है और उन्हें इसके लिये विवाह करना चाहिये, यह उन्हें पाण्डुरंग विट्ठलनाथजी की आज्ञा हुई। केवल इसी कारण उन्होंने विवाह किया। मेरे तो छः पुत्र और चार पुत्रियाँ हैं।

दुर्गावती – परन्तु जय! बहूजी महाराज के लीला में पधारने के पश्चात् क्या आपने यह अनुभव नहीं किया कि श्रीनाथजी की सेवा में वह रस कुछ सीमा तक शुष्क हो गया है, जो बहूजी महाराज के रहते हुए बह रहा था। मुझे आपकी शरण में आये बहुत समय नहीं बीता है; पर इस अल्पकाल में ही आपने मुझे श्रीनाथजी की उस सेवा का वृत्त बताया है, जो सेवा आप दोनों मिलकर करते थे। आपने मुझे महाप्रभुजी के चौरासी वैष्णवों में से कइयों की तथा आपके स्वयं के शिष्यों में से कइयों की वार्ताएँ बतायी हैं। इनमें जिन्होंने दम्पत्ति के रूप में सेवा की थी और जो आज भी दम्पत्ति के रूप में सेवा करते हैं, उनकी सेवा एकाकियों से कहीं अधिक रसमयी होती है। महाप्रभुजी ने यदि सम्प्रदाय की परम्परा के हेतु संतान के लिये विवाह किया था तो आपको भगवत्सेवा में रस की उत्पत्ति के लिये फिर से विवाह करना चाहिये। भगवान् की कृपा से आपकी शारीरिक सम्पत्ति भी अभी विवाह के योग्य है।

गोसाईंजी – नहीं–नहीं, महारानी! आप यह आग्रह छोड़ दें। रूक्मिणी का स्थान मैं किसी अन्य कुमारी से भरूँ, यह मेरे लिये सम्भव नहीं है।

(लघु यवनिका)

दूसरा दृश्य

स्थान – वही।

समय – संध्या।

(एक ओर से कुछ और दूसरी ओर से अन्य नागरिकों का प्रवेश।)

एक – अरे, सुना, सुना तुमने – पद्मावती ने प्रतिज्ञा की है कि यदि वह विवाह करेगी तो गोसाईंजी से, अन्यथा आजीवन कुमारी ही रहेगी।

दूसरा – हाँ, अभी–अभी सुना। पद्मावती के पिता के लिये तो बड़ी भारी समस्यां हो गयी।

तीसरा – किसी भी पिता के लिये इससे बड़ी कौन–सी समस्या हो सकती है।

चौथा – और गोसाईंजी किसी प्रकार भी विवाह करने के लिये स्वीकृति नहीं दे रहे हैं।

पाँचवाँ – मेरा तो विश्वास है कि श्रीनाथजी की जो इच्छा होगी, वही होगा।

पहला – हाँ, इसे तो मैं भी स्वीकार करता हूँ।

दूसरा – और श्रीनाथजी की इच्छा यदि यह न होती कि गोसाईंजी का फिर से विवाह हो तो यह प्रश्न ही नहीं उठता।

तीसरा – श्रीनाथजी उस काल की सेवा देख चुके हैं, जिस काल में गोसाईंजी और रूक्मिणी मिलकर उनकी सेवा करते थे।

(नेपथ्य में कुछ हल्ला होता है।)

कुछ नागरिक – लो, गोसाईंजी फिर इसी अपने प्रिय स्थल पर पधार रहे हैं।

दूसरे कुछ नागरिक – और विवाह का यह प्रश्न भी कदाचित् अब हल हो जायगा।

(गोसाईंजी हर्षानीजी तथा कुछ वैष्णवों के साथ प्रवेश करते हैं। सरोवर के उसी घाट पर उनका आसन बिछता है, जिस पर पहले दृश्य में बिछा था। गोसाईंजी अपने आसन के आधे भाग पर बैठते हैं, शेष आधे भाग पर हर्षानीजी। अन्य वैष्णव भूमि पर बैठते हैं।)

हर्षानीजी – इस प्रश्न के निर्णय का भार आपने, जब! मुझ पर रख दिया था। मैंने सारे विषय पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया है।

गोसाईंजी – जो भी निष्कर्ष आपने निकाला हो, वह मुझे बता दीजिये। मैंने तो कह ही दिया था कि जो निर्णय आप करेंगे, वह मुझे स्वीकृत होगा। पिताश्री जिस प्रकार मुझे आपको सौंप गये थे, उसे देखते हुए मैं अन्यथा कर ही क्या सकता था। आजपर्यन्त आपके किसी मन्तव्य विरुद्ध मैं चला हूँ?

हर्षानी – जय! आपकी जो कृपा और जो विश्वास मुझ पर है, क्या मैं वह जानता नहीं? जैसा मैंने निवेदन किया, सारे प्रश्न पर मैंने गम्भीरतापूर्वक विचार किया। महारानी दुर्गावती का एक ऐतिहासिक व्यक्तित्व है। उनका प्रस्ताव है। श्रीनाथजी की सेवा से भी इस प्रस्ताव का निकट का सम्बन्ध है और फिर अभी–अभी मैंने

सुना है कि उस कन्या ने तो निश्चय किया है कि यदि वह विवाह करेंगी तो आपसे, अन्यथा कुमारी ही रहेगी। मैं इसी निश्चय पर पहुँचा हूँ कि यह विवाह आपको विवश होकर करना ही होगा।

गोसाईंजी – (आँखों में आँसू भरकर, गद्गद् स्वर में) मैंने कहा ही है कि आप जो भी निर्णय करेंगे, मैं उसके अनुसार चलूँगा; परन्तु, हर्षानीजी! क्या मैं किसी प्रकार भी रूक्मिणी को भूल सकता हूँ? उनके स्थान पर किसी अन्य कुमारी को बिठाना....... ।

हर्षानी – कृपानाथ! जीवन में कई ऐसे प्रसंग आते हैं, जब भावनाओं को एक ओर रख, छाती पर पत्थर रखकर कर्त्तव्य का पालन करना पड़ता है। श्रीनाथजी की ऐसी ही इच्छा है कि आप फिर से विवाह करें।

(लघु यवनिका)

श्री विट्ठल नाथ जी